अथ

पद्मपुराणोक्तं कार्तिकमासमाहात्म्यं

भाषाटीकासमेतम् ।

श्रीगणेशायनमः । एक समय श्रीसूतजी शौनकादिक मुनियों से बोले कि श्रीकृष्णचन्द्र जी से वार्त्तालाप करके जब नारदजी चलेगये तब हर्ष से प्रसन्नमुखी सत्यभामा कृष्ण से बोली ॥१॥ हे प्रभो ! मैं धन्य हूं, मैं सब कुछ कर चुकी मेरा जन्म सफल हुआ और मेरे जन्म के कारण मेरे माता पिता भी धन्य हैं ॥२॥ जिन्होंने मेरी ऐसी संसार में ऐश्वर्यशालिनी

श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीकृष्णायनमः ॥ श्रियः पतिमथामंत्र्य गते देवर्षिसत्तमे ॥ हर्षोत्फुल्लाननना सत्या वासुदेवं तदाऽब्रवीत् ॥ सत्योवाच ॥ धन्याऽस्मि कृतकृत्यास्मि सफलं जीवितं मम ॥ मज्जन्मनि निदाने च धन्यौ तौ पितरौ मम ॥२॥ यौ मां त्रैलोक्यसुभगां जनयामासतुर्ध्रुवम् ॥ षोडशस्त्रीसहस्राणां वल्लभाऽहं यतस्तव ॥ ३ ॥ यस्मान्मयादिपुरुषः कल्पवृक्षसमन्वितः ॥ यथोक्तविधिना सम्यङ् नारदाय समर्पितः ॥ ४ ॥ यद्वार्तामपि जानंति भूमिसंस्था न जंतवः ॥ सोऽयं कल्पद्रुमो गेहे सदा तिष्ठति चांगणे ॥ ५ ॥ त्रैलोक्याधिपतेश्चाहं श्रीपतेरतिवल्लभा ॥ अतोऽहं

पुत्री को उत्पन्न किया और १६ हजार स्त्रियों में मैं आप की जिस कारण परम प्यारी हूं ॥३॥ और जिसलिये मैंने आदि पुरुष के साथ कल्पवृक्ष नारदजी को दे दिया ॥४॥ जिस कल्पवृक्ष की बात भी पृथ्वी पर के लोग नहीं जानते वही कल्पवृक्ष इस समय मेरे गृह में वर्त्तमान् है ॥ ५ ॥ और मैं त्रैलोक्यस्वामी लक्ष्मीपति की पत्नी हूँ इसी कारण हे

मधुसूदन ! आप से कुछ पूछना चाहती हूं ॥ ६ ॥ यदि आप मुझ पर प्रेम रखते हैं तो विस्तार से कहिये जो सुन कर मैं अपने आत्मा के हित का कार्य करूं ॥ ७ ॥ जिसमें आपसे मेरा वियोग कल्पपर्यन्त भी न होय । सूतजी कहने लगे । यह वाक्य अपनी प्यारी का सुन कर मुसकुराते हुए श्रीकृष्णचन्द्र सत्यभामा का अपने हाथ से हाथ

प्रष्टुमिच्छामि किंचित्त्वां मधुसूदन ॥ ६ ॥ यदि त्वं मत्प्रियकरः कथयस्वात्र विस्तरम् ॥ श्रुत्वा तच्च पुनश्चाहं करोमि हितमात्मनः ॥ ७॥ यथाऽऽकल्पं त्वया देव वियुक्ता स्यां न कर्हिचित् ॥ सूत उवाच ॥ इति प्रियावचः श्रुत्वा स्मेरास्यः स बलानुजः ॥ ८ ॥ सत्याकरं करे धृत्वाऽगमत्कल्पतरोस्तलम् ॥ निषिध्यानुचरं लोकं सविलासः प्रियान्वितः ॥ ९ ॥ प्रहस्य सत्यामामंत्र्य प्रोवाच जगतां पतिः ॥ तत्प्रीतिपरितोषोत्थलसत्पुलकितांगकः ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ न मे त्वतः प्रियतमा काचिदन्या नितंबिनी ॥ षोडशस्त्रीसहस्राणां प्रिया प्राणसमा ह्यसि ॥ ११ ॥ त्वदर्थं देव-

पकड़ कर कल्पतरु के नीचे गये और नौकरों को सब लोगों का प्रवेश निषेध करके विलास के साथ ॥८–९॥ हंसकर संसार के पति और सत्यभामा की प्रीति से सम्पन्न और पुलकित शरीर वाले श्रीकृष्ण सत्यभामा से बोले ॥ १० ॥ कि तुम्हारे सदृश हम को दूसरी स्त्री प्यारी नहीं है १६ हजार स्त्रियों में तुम हमारे प्राणों भी अधिक प्यारी

हो ॥ ११ ॥ तुम्हारे लिये मैंने देवतों के साथ देवराज इन्द्र से भी विरोध किया। हे कान्ते ! तुमने जो प्रार्थना की है कुछ महाआश्चर्यकारी बात को सुनो। सूतजी शौनकादिक मुनियों से बोले कि एक समय भगवान् श्रीकृष्ण प्रिया की प्रसन्नता के लिये गरुड़ पर चढ़कर इन्द्रलोक में गये। श्रीकृष्ण ने वहां जाकर कल्पवृक्ष मांगा और इन्द्र ने कहा कि मैं नहीं दूंगा अतः गरुड़ जी ने उन पर क्रोधित होकर युद्ध किया। गोलोक में गरुड़ ने गौवों से युद्ध किया और गरुड़ के चोंच के आघात से गौओं के पूंछ और कान से रुधिर गिरा इन तीनों वस्तुओं से तीन वस्तु उत्पन्न हुई। कानों से तमाखू, पुच्छ से गोभी और रुधिर से मेंहदी उत्पन्न हुई मोक्ष की इच्छा करने वाले

राजोऽपि विरुद्धो दैवतैः सह ॥ त्वया यत् प्रार्थितं कांते शृणु तच्च महाद्भुतम् ॥ १२ ॥ अदेयमपि वाऽकार्यमकथ्यमपि यत्पुनः ॥ तत्करोमि कथं प्रश्नं कथयामि न तत्प्रिये ॥ पृच्छस्व सर्वं

पुरुष इन तीनों वस्तुओं का सेवन कभी भी न करें। तब गौवों ने भी क्रोधित होकर सींगों से गरुड़ को मारा उससे तीन पंख गरुड़ के टूट कर पृथ्वी पर गिरे उनमें से एक से नीलकंठ दूसरे से मोर और तीसरे से चकवा नाम पक्षी उत्पन्न हुआ। इन तीनों के दर्शन से शुभ फल होता है इसी कारण सेमैंने तुम से यह उपाख्यान कहा जो फल गरुड़ के दर्शन से मनुष्य प्राप्त करता है वह फल इन तीनों के दर्शन से प्राप्त कर मेरे लोक में जाता है ॥१२॥ और जो वस्तु देने योग्य नहीं है और जो कार्य करने के योग्य नहीं है और न कहने ही के योग्य है वह सब मैं करूँगा और तुम्हारे

प्रश्न का उत्तर नहीं दूं यह कैसी बात है ॥१३॥ हे प्रिये ! इसलिये जो तेरे मन में होय सो सब पूछ मैं सब कहूंगा। सत्यभामा बोली कि हे प्रभो ! मैंने पूर्वमें कौनसा दान व्रत तप किया है ॥ १४ ॥ जिस से मैं मर्त्यलोक में जनमी तथा मर्त्यलोक में आकर आपकी अर्द्धांगिनी हुई और गरुड़गामिनी हुई और आप के साथ इन्द्रादिलोकों में घूमतीहूं

कथये यत्ते मनसि वर्तते ॥ सत्योवाच ॥ दानं व्रतं तपो वापि किं तु पूर्वं कृतं मया ॥ १४ ॥ येनाहं मर्त्यजा मर्त्ये भवातीताऽभवं किल ॥ तवांगार्धहरा नित्यं गरुडासनगामिनी ॥ १५ ॥ इन्द्रादिदेवता वासमागमंत्या त्वया सह ॥ अतस्त्वां परिपृच्छामि किं कृतं तु मया शुभम् ॥ १६ ॥ भवांतरे च किंशीला का चाहं कस्य कन्यका ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणुष्वैकमनाः कांते यथा त्वं पूर्वजन्मनि ॥१७॥ पुण्यं व्रतं कृतवदी तत्सर्वं कथयामि ते ॥ आसीत्कृतयुगस्यांते माया-

इस लिये आपसे पूछती हूं कि मैंने ऐसे कौनसे शुभ कार्य किये हैं ॥ १५-१६ ॥ और मैं पूर्व जन्म में कैसे स्वभाव-वाली और किसकी कन्या थी। श्रीकृष्ण बोले कि प्रिये ! तू एकाग्रचित्त होकर सुन जो तुमने पूर्व जन्म में किया था ॥ १७ ॥ जो पवित्र व्रत या जो कर्म तुमने किया था या जिसकी तू पुत्री थी सो सब मैं कहता हूं। पहले

सत्ययुग के अन्त में मायापुरी में अत्रिगोत्रवाला एक देवशर्मा नामक ब्राह्मण वेद और वेदाङ्गों का ज्ञाता हुआ वह नित्य अतिथिसेवा, अग्निहोत्र करनेवाला सूर्य का उपासक सूर्य के समान तेजस्वी था ॥ १८–१९ ॥ उसके वृद्धावस्था में गुणवती नाम की कन्या हुई उसने चन्द्र नामक अपने शिष्य के साथ उस कन्या का विवाह कर दिया।

पुर्यां द्विजोत्तमः ॥ १८॥ आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदांगपारगः ॥ आतिथेयोऽग्निशुश्रूषो सौरव्रतपरायणः ॥ १९ ॥ सूर्यमाराधयन्नित्यं साक्षात्सूर्य इवापरः ॥ तस्यातिवयसश्चासीन्नाम्ना गुणवती सुता ॥२०॥ अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौसुताम् ॥ तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्वशी ॥२१॥ तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्माहरणार्थिनौ ॥ महाद्रिपादोपवने चेरतुस्तावितस्ततः ॥ २२ ॥ तावुभौ राक्षसं घोरमायांतं समपश्यताम् ॥ भयविह्वलसर्वांगावसमर्थौ पलायितुम् ॥२३॥ निहतौ रक्षसा तेन

अब वह ब्राह्मण उसको पुत्र के समान और वह उसको पिता के समान समझने लगे ॥ २०–२१ ॥ वे दोनों किसी समय कुशा और लकड़ी लाने के लिये वनमें गये। उन दोनों ने हिमालय के पास के वन में घूमते घूमते आते हुए एक राक्षस को देखा। उस राक्षस के डर से उनके सब अंग ढीले पड़ गये और भागने में भी शक्तिहीन हो गये ॥ २२–२३ ॥ तब धर्मराज के समान उस राक्षस ने उन दोनों को मार डाला। उन दोनों को उस क्षेत्र के

प्रभाव से मेरे पास रहने वाले मेरे गण वैकुण्ठ भवन में ले गये ॥२४॥ जीवन पर्यन्त जो उन्होंने सूर्य की पूजा आदि की थी उसी कार्य से मैं उनपर प्रसन्न हो गया ॥ शिव, सूर्य, गणेश, विष्णु, दुर्गा इन सब के उपासक समुद्र में वर्षा जल के समान मेरे ही लोक में प्राप्त होते हैं ॥ २५-२६ ॥ एक ही मैं काल क्रिया के भेद से पांच प्रकार का हूं।

कृतांतसमरूपिणा ॥ तौ तत्क्षेत्रप्रभावेण धर्मशीलतया पुनः ॥ २४ ॥ वैकुंठभवनं नीतौ मद्गणै-र्मत्समीपगैः ॥ यावज्जीवं तु यत्ताभ्यां सूर्यपूजादिकं कृतम् ॥ २५ ॥ तेनाहं कर्मणा ताभ्यां सुप्रीतो-ह्यभवं किल ॥ शैवाः सौरश्च गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः ॥२६॥ मामेव प्राप्नुवंतीह वर्षाभः सा-गरं यथा ॥ एकोहं पंचधा जातः क्रियया नमाभिः किल ॥२७॥ देवदत्तो यथा कश्चित् पुत्राद्याह्वान-नामभिः ॥ २८ ॥ ततश्च तौ मद्भवनाधिवासिनौ विमानयानौ रविवर्चसावुभौ ॥ मत्तुल्यरूपौ मम सन्निधानगौ दिव्यांगनाचंदनभोगभोगिनौ ॥२९॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये कृष्णसत्या-

जैसे एक ही देवदत्त का पुत्र और भाई आदिकों के नामों से पृथक् २ जाना जाता है ॥ २७-२८ ॥ फिर वे दोनों मेरे लोक में आये और विमान पर आरूढ़ सूर्य समान तेजस्वी मेरे ही ऐसे रूप वाले और दिव्य चन्दन तथा माला पहन कर मेरे ही पास रहने लगे ॥ ॥ २९ ॥ इति श्रीबलदेव शर्म कृते भाषा टीका युते का० मा० प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

श्रीकृष्ण बोले कि हे प्रिये ! तब वह गुणवती अपने पिता तथा अपने पति को राक्षस से मारे हुए सुनकर पिता और पति के दुःख से दुःखित होकर विलाप करनेलगी ॥१॥ हा स्वामी ! हा पिता ! हमको छोड़कर तुमलोग कहां गये। मैं बालिका हूं अब मैं आप लोगों के बिना अनाथ हूं क्या करूं ॥ २ ॥ अब मेरा गृह में भोजन वस्त्रादिकों से कौन भरण पोषण

संवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ ॥ पितृभर्तृजदुःखार्ता करुणं पर्यदेवयत् ॥१॥ गुणवत्युवाच ॥ हा नाथ हा पितस्त्यक्त्वा गच्छथः क्व मया विना ॥ बालाहं किं करोम्यद्य ह्यनाथा भवतोर्विना ॥ २ ॥ को नु मामाश्रितां गेहे भोजनाच्छादनादिभिः ॥ अकिंचित्कुशलां स्नेहात् पालयिष्यति दूषिताम् ॥ ३ ॥ क्व यास्यामि क्व तिष्ठामि किं करोमि यथाघृणम् ॥ विधात्रा हा हताऽस्म्यद्य कथं जीवामि बालिशा ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ एवं बहु विलप्याथ कुररीव भृशातुरा ॥ हतभाग्या हतसुखा हताशा हतजीविता ॥ ५ ॥ शरणं

करेगा। मैं कुछ काम भी नहीं कर सकती और अब विधवा का पालन कौन करेगा ॥ ३ ॥ मैं हतभाग्य हूं मेरे सब सुख नष्ट हो गये मेरी सब आशा निष्फल हो गई मेरा जीवन भी नष्ट हुआ। मैं किसके पास जाऊं जो मेरे दुःख का नाश करे, कहां जाऊं, कहां रहूं, क्या करूं, मैं ऐसी घृणित होगई। मेरे ऊपर विधाता का कोप हुआ अब मैं कैसे जीऊंगी

मैं बड़ी मूर्ख हूं ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण बोले । इस प्रकार वह कुररी पत्नी की तरह विलाप करती हुई दुःखित और विकल होकर वायु से गिराये हुए केले के पेड़ के समान पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ ५-६ ॥ बहुत देरी से होश में आकर फिर भी बहुतसा विलाप कर दुःख से पीड़ित शोकसमुद्र में डूबगई ॥ ७ ॥ फिर वह अपनी गृह की सामग्री बेंचकर

कं पश्याम्यद्य यो मे दुःखं प्रमार्जति ॥ पपात भूमौ विकला रंभा वातहता यथा ॥ ६ ॥ चिरादाश्वास्य सा भूयो विलप्य करुणं बहु ॥ निमग्ना शोकजलधौ दुःखिता समवर्तत ॥ ७ ॥ सा गृहोपस्करान् सर्वान् विक्रीय शुभकर्म तत् । तयोश्चक्रे यथाशक्ति पारलौक्यां यथा क्रियाम् ॥ ८ ॥ तस्मिन्नेव पुरे चक्रे वासं प्रभृनजीविनी ॥ विष्णुभक्तिपरा शांता सत्यशौचा जितेंद्रिया ॥ ६ ॥ व्रतद्वयं तया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम् ॥ एकादशीव्रतं सम्यक् सेवनं कार्तिकस्यच ॥ १० ॥

अति सावधानी के साथ यथाविधि और यथाशक्ति उनकी श्राद्धादिक्रिया करती हुई ॥ ८ ॥ और उसी नगरी में रहकर विष्णुभगवान की भक्ति में तत्पर होकर शुद्धता शान्तस्वभाव और इन्द्रियों को वश में रखकर निवास करने लगी ॥ ९ ॥ उसने जन्म से लेकर मरण तक एकादशी और कार्तिक का व्रत विधिपूर्वक किया ॥ १० ॥

हे प्रिये ये दोनों व्रत भोग, मुक्ति तथा पुत्र और संपत्ति को देनेवाले और पवित्र हैं तथा हमको बड़े ही प्यारे हैं ॥ ११ ॥ जो प्राणी तुला की संक्रान्ति पर कार्तिकमास में प्रातःकाल के समय स्नान करते हैं वे यदि महापातकी भी होयँ तोभी मुक्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥ जो मनुष्य स्नान, जागरण, दीपदान और तुलसी के वन की रक्षा करते हैं वे विष्णु के

एतद्व्रतद्वयं कांते ममातीव प्रियंकरम् ॥ भुक्तिमुक्तिकरं पुण्यं पुत्रसंपत्तिदायकम् ॥ ११ ॥ कार्तिके मासि ये नित्यं तुलासंस्थे दिवाकरे ॥ प्रातः स्नास्यंति ते मुक्ता महापातकिनोऽपिच ॥ १२ । स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनम् । कार्त्तिके मासि कुर्वन्ति ते नरा विष्णुमूर्तयः ॥ १३ ॥ संमार्जनं विष्णुगृहे स्वस्तिकादि निवेदनम् ॥ विष्णोः पूजां च ये कुर्युर्जीवन्मुक्तास्तु ते नराः ॥ १४ ॥ इत्थं दिनत्रयमपि कार्तिके ये प्रकुर्वते ॥ देवानामपि ते वंद्याः किंचैवाजन्मनः कृतम् ॥ १५ ॥ इत्थं गुणवती सम्यक् प्रत्यब्दं व्रतिनी ह्यभूत् ॥ नित्यं विष्णोः प्रपूजायां भक्त्या

सदृश हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य कार्त्तिकमास में विष्णु भगवान का मन्दिर झाड़ना साथिया आदिक लगाना और विष्णु का जो पूजन करते हैं वे जीवन्मुक्त हैं ॥ १४ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य कार्तिकमास में तीन दिन भी करते हैं उनकी देवता भी पूजा करते हैं और जिन्होंने जन्म से किया है उनका तो कहना ही क्या है ॥ १५ ॥ इस प्रकार

गुणवती प्रतिवर्ष कार्तिक का व्रत और भक्तिपूर्वक चित्त लगाकर विष्णु की पूजा करती थी ॥ १६ ॥ किसी समय वह बुढ़ौती के कारण दुबली होगई थी और ज्वर से पीड़ित होने पर भी धीरे २ गंगास्नान करने को गई ॥ १७ ॥ ज्योंही वह जल में स्नान करने के लिये उतरी त्योंही शीत से कांपने लगी । उसी समय आकाश से उतरते हुए

तत्परमानसा ॥ १६ ॥ कदाचित्सरुजा साऽथ कृशांगी ज्वरपीडिता ॥ स्नातुं गंगां गता कांते कथंचिच्छनकैस्तदा ॥ १७ ॥ यावज्जलांतरगता कंपिता शीतपीडिता ॥ तावत्सा विह्वलाऽपश्यद्विमानं प्राप्तमंबरात् ॥ १८ ॥ शंखचक्रगदापद्मैरायुधैरुपलक्षिताः ॥ विष्णुरूपधराः सम्यग् वैनतेयध्वजांकितम् ॥ १९ ॥ आरोह्य व्योमयानं तामप्सरोगणसेविताम् ॥ चामरैर्वीज्यमानां तां वैकुंठं मद्गणा नयन् ॥ २० ॥ अथ सा तद्विमानस्था ज्वलदग्निशिखोपमा ॥ कार्तिकव्रतपुण्येन

विमान को देखा ॥ १८ ॥ और शंख, चक्र, गदा पद्म इन आयुधों से संयुक्त विष्णु के रूप धारण करनेवाले विष्णु के पार्षद गरुड़ की ध्वजा से संयुक्त विमान पर चढ़ायकर अप्सरागणों से सेवित उसको चंवर डुलावते हुए वैकुंठ में लेगये ॥ १९ ॥ २० अब वह प्रज्वलित अग्नि के समान उस विमान में बैठी हुई कार्त्तिक के व्रतों के प्रभाव से मेरे निकट

आगई ॥ २१ ॥ जब ब्रह्मादि देवताओं के प्रार्थना करने से मैं पृथ्वी पर आया तब मेरे साथ मेरे गण भी आये ॥२२॥ हे भामिनी ! ये सब यादव मेरे गण ही हैं देवशर्म्मा नामक जो ब्राह्मण था वह तेरा पिता सत्राजित हुआ ॥ २३ ॥ और तेरे पति चंद्रशर्मा जो थे वे अक्रूर हुए तू वही गुणवती है कार्तिक के व्रतों के पुण्य से हमको तू अधिक प्यारी

मत्सान्निध्यं गताऽभवत् ॥ २१ ॥ अथ ब्रह्मादिदेवानां यदा प्रार्थनया भुवम् ॥ आगतोऽहं गणाः सर्वे यातास्तेऽपि मया सह ॥ २२ ॥ एते हि यादवाः सर्वे मद्गणा एव भामिनि ॥ पिता ते देवशर्माऽभूत् सत्राजिदभिधोह्यथ ॥ २३ ॥ यश्चंद्रशर्मासोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभा ॥ कार्तिकव्रतपुण्येन बहु मत्प्रीतिदायिनी ॥ २४ ॥ मद्द्वारि यत्त्वया पूर्वं तुलसीवाटिका कृता ॥ तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवांगणगतः शुभे ॥ २५ ॥ कार्तिके दीपदानं च त्वया यत्तु कृतं पुनः ॥ त्वग्देहसंस्था च शुभा तस्माल्लक्ष्मीः स्थिराऽभवत् ॥ २६ ॥ यच्च व्रतादिकं सर्वं विष्णवे भर्तृरूपिणे ॥ निवे-

है ॥ २४ ॥ मेरे मंदिर के द्वार पर जो तुमने तुलसी का बाग लगाया था उसी के पुण्य से हे शुभे तेरे गृह में कल्पवृक्ष विराजमान है ॥ २५ ॥ और जो पूर्व में तुमने कार्तिक मास में दीप दान किया था इसी से तुम्हारे देहमें कान्ति और गृह में लक्ष्मी स्थित होकर निवास करती है ॥ २६ ॥ और जो व्रतादिकपतिरूप भगवान को समर्पण किये उसीके फल

से तू मेरी भार्या हुई ॥ २७ ॥ जन्म से लेकर मरण तक जो तुमने कार्तिक के नियम से व्रत किये हैं इसीसे किसी समय में भी मेरे से तेरा वियोग नहीं होगा ॥ २८ ॥ इसी प्रकार जो मनुष्य कार्तिक मास में व्रत करेंगे वे सब मेरे ही समीप रहैंगे और तुम्हारे सदृश प्यारे होवेंगे ॥ २९ ॥ और यज्ञ, दान, व्रत और तपस्या करनेवाले मनुष्यों को

दितवती तस्मान्मम भार्यात्वमागता ॥ २७ ॥ आजन्ममरणात्पूर्वं यत्कृतं कार्तिकव्रतम् ॥ कदाचिदपि तेन त्वं मद्वियोगं न यास्यसि ॥ २८ ॥ एवं ये कार्तिके मासि नरा व्रतपरायणाः ॥ मत्सान्निध्यं गतास्तेऽपि प्रीतिदास्त्वं यथा मम ॥ २९ ॥ यज्ञदानव्रततपःकारिणो मानवाः खलु ॥ कार्तिकव्रतपुण्यस्य नाप्नुवंति कलामपि ॥ ३० ॥ इत्थं निशम्य भुवनाधिपतेस्तदानीं प्राग्जन्मपुण्यभववैभवजातहर्षा ॥ विश्वेश्वरं त्रिभुवनैकनिदानभूतं कृष्णं प्रणम्य वचनं निजगाद सत्या ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यासंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥

जो फल होता है उनको कार्तिक के व्रत के फलका सोलहवां भाग में भी नहीं होता इस प्रकार पूर्व जन्म के पुण्य के प्रभाव का वृत्तान्त सुनकर बड़ी हर्षित हुई और संसार के एक आदि कारण विश्वेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम कर बोली ॥ ३१ ॥ इति श्री बलदेवशर्म कृते भाषा टीका युते का० मा० द्वितीयोऽध्यायः ॥

सत्यभामा बोली कि हे नाथ ! काल (समय) स्वरूपी आपके, सबही काल के अवयव (भाग) समान हैं तब कार्त्तिकमास मासों में श्रेष्ठ कैसे है ॥१॥ और तिथियों में एकादशी तथा मासों में कार्तिकमास आपको कैसे प्यारा है हे देवदेवेश ! इसमें क्या कारण है सो कहिये ॥ २ ॥ श्रीकृष्णजी बोले हे कान्ते ! तुमने अच्छा पूछा इसमें वेन के पुत्र

॥ श्रीसत्योवाच ॥ सर्वेऽपि कालावयवास्तव कालस्वरूपिणः ॥ मासानां तु कथं नाथ स मासः कार्तिको वरः ॥ १ ॥ एकादशी तिथीनां च मासानां कार्तिकः प्रियः ॥ कथं ते देवदेवेश कारणं तत्र कथ्यताम् ॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया कांते शृणुष्वैकाग्रमानसा ॥ पृथोर्वैन्यस्य संवादं महर्षेर्नारदस्य च ॥ ३ ॥ एवमेव पुरा पृष्टो नारदः पृथुना प्रिये ॥ उवाच कार्तिकाधिक्यकारं सर्वविन्मुनिः ॥४॥ नारद उवाच ॥ शंखनामाऽभवत्पूर्वमसुरः सागरात्मजः ॥ त्रिलोकीमथने सक्तो महाबलपराक्रमः ॥ ५ ॥ जित्वा देवान्निराकृत्य स्वर्लोकात्स महासुरः ॥ इंद्रादिलो-

और पृथुराजा के पुत्र का संवाद एकाग्र चित्त से सुनो ॥ ३ ॥ इसी प्रकार पहले नारद से पृथु ने पूछा था और सर्वज्ञ नारद मुनि ने कार्त्तिक मास की श्रेष्ठता बताई थी ॥ ४ ॥ नारदजी बोले । पहले समुद्र का पुत्र महाबली और पराक्रमी त्रिलोकी को मथ डालने में समर्थ शंखासुर नामक हुआ ॥ ५ ॥ वह असुर स्वर्गलोक से देवताओं को

जीत और निकालकर इन्द्रादि लोकपालों के अधिकारों को अपने अधिकार में कर लिया ॥ ६ ॥ उसके भय से कंपायमान होकर सब देवगण सुमेरु पर्वत की गुफा में अपनी स्त्री और बांधवों के साथ बहुत वर्ष तक निवास किया ॥ ७ ॥ जब सब देवता सुमेरु की गुहा में दृढ़तापूर्वक रहने लगे तब वह असुर विचारने लगा कि यद्यपि मैंने सब

कपालानामधिकरांस्तथाऽहरत् ॥ ६ ॥ तद्भयादथ ते देवाः सुवर्णाद्रिगुहां गताः ॥ न्यवसन्बहुवर्षाणि सावरोधाः सबांधवाः ॥ ७ ॥ सुवर्णाद्रिगुहादुर्गसंस्थितास्त्रिदशादयः ॥ तद्दीर्घायांबभूवुस्ते तदा दैत्योऽविचारयत् ॥ ८ ॥ हृताधिकारास्त्रिदशा मया यद्यपि निर्जिताः ॥ लक्ष्यंते बलयुक्तास्ते करणीयं मयाऽत्र किम् ॥ ९ ॥ ज्ञातं तत्तु मया देवा वेदमंत्रबलान्विताः ॥ तान्हरिष्ये ततः सर्वे बलहीना भवंति वै ॥ १० ॥ इति मत्वा तदा दैत्यो विष्णुमालक्ष्य निद्रितम् ॥ सत्यलोकाज्जहाराशु वेदानादिस्वयंभुवः ॥११॥ नीतास्तु तेन ते वेदास्तद्भयात्तो निराक्रमन् ॥ तोयानि विविशुर्यज्ञमंत्र-

देवताओं को जीत लिया तौभी ये लोग बलवान् ही दिखाई देते हैं तो अब यहां पर हमको क्या करना चाहिये ॥८॥ ॥९॥ आज मैंने जान लिया कि ये देवता वेद मंत्रों से बलयुक्त हो रहे हैं अतःउन वेदोंको हरण करनेसे ये बलहीन हो जावेंगे ॥१०॥ नारदजी बोले । ऐसे विचारकर विष्णु को सोये हुए देखकर सत्यलोक से वेदों को हरण कर लाया॥११॥

जब हरण करता था उसी समय बीजों के साथ यज्ञ के मंत्र उसके भय से जलमें उन्होंने प्रवेश किया अर्थात् छिप गये ॥ १२ ॥ उनको ढूंढता हुआ शंखासुर भी समुद्र के भीतर घूमने लगा तब उस दैत्य ने उन वेदमंत्रों को इकट्ठा कहीं नही पाया ॥ १३ ॥ अब ब्रह्मा भी सब देवताओं को साथ पूजा की सब सामग्री और भेट लेकर वैकुण्ठ में विष्णु की

बीजसमन्विताः ॥ १२ ॥ तान्मार्गमाणः शंखोऽपि समुद्रांतर्गतो भ्रमन् ॥ न ददर्श तदा दैत्यः क्वचिदेकत्र संस्थितान् ॥ १३ ॥ अथ ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं विष्णुं शरणमन्वगात् ॥ पूजोपकरणान्गृह्य वैकुंठभुवनं गतः ॥ १४ ॥ तत्र तस्य प्रबोधाय गीतावाद्यादिकाः क्रियाः ॥ चक्रुर्देवास्तथा गंधधूपदीपान्मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ अथ प्रबुद्धो भगवांस्तद्भक्तिपरितोषितः ॥ ददृशुस्ते सुरास्तत्र सहस्रार्कसमद्युतिम् ॥ १६ ॥ उपचारैः षोडशभिः संपूज्य त्रिदशास्तदा ॥ दंडवत्पतिता भूमौ तानुवाचाथ

शरण गये ॥ १४ ॥ अब उनको जगाने के लिये गीत वाद्य आदिक करने लगे और धूपगन्धादि देने लगे ॥ १५ ॥ उनलोगों की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान जागे तब देवताओं में हजारों सूर्यों के समान तेजस्वी विष्णु भगवान के दर्शन किये ॥ १६ ॥ फिर देवताओं ने षोडशोपचार से विष्णु की पूजा करके भूमि में दंडवत प्रणाम किया तब विष्णु

भगवान उनसे बोले ॥१७॥ मैं आपलोगों के इस गीतवाद्य और मंगल से मैं वर देता हूं तुम लोग अपना इच्छित वर मांगो मैं सब दूंगा ॥ १८ ॥ कार्त्तिकमास की शुक्ल एकादशी तिथि से देवउठान एकादशी तक पहर भर के तड़के जो मनुष्य तुमलोगों के समान गीतादिक मंगल करेंगे वे सब हमारे प्यारे होंगे और हमारे समीप निवास करेंगे ॥ १९ ॥

माधवः ॥ १७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ वरदोऽहं सुरगणा गीतवाद्यादिमंगलैः ॥ मनोभिलषितान् कामान् सर्वानेव ददामि वः ॥ १८ ॥ इषस्य शुक्लैकादश्यां यावदुद्बोधिनी भवेत् ॥ निशातुर्यांशशेषे ये गीततूर्यादिमंगलान् ॥ १९ ॥ कुर्वंति नित्यं मनुजा भवद्भिर्यद्यथा कृतम् ॥ ते मत्प्रीतिकरा नित्यं मत्सान्निध्यं व्रजंति हि ॥ २० ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयापो यद्भवद्भिर्यथा कृतम् ॥ तदद्भुतगुणं तस्मात् ज्ञातं वोऽसुखकारणम् ॥ २१ ॥ वेदाः शंखाहृताः सर्वे तिष्ठंत्युदकसंस्थिताः ॥ ताना[नयाम्यहं] देवा हत्वा सागरनंदनम् ॥ २२ ॥ अद्यप्रभृति वेदास्तु मंत्रबीजमखान्विताः ॥ प्रत्यब्दं कार्तिके मासि

॥२०॥ पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय जो कुछ तुमलोग हमारे निमित्त यहां लाये हो वे सब अनंतगुण होकर तुम्हारे आनन्द के कारण होंगे ॥२१॥ और शंखासुर जो वेदों को ले गया है वे सब समुद्र में हैं शंखासुर को मारकर उन वेदों को मैं ले आता हूँ ॥ २२ ॥ आज से मंत्र बीजों के साथ वेद प्रतिवर्ष कार्तिक मास में जलमें सदा निवास करेंगे

॥२३॥ मैं मत्स्य का रूप धारण करके समुद्र में जाता हूं और आपलोग भी मुनीश्वरों के सहित हमारे साथ आइये ॥२४॥ इस लोक के जो मनुष्य प्रातःकाल स्नान करेंगे वे यज्ञान्त के स्नान के फलभागी होंगे ॥२५॥ जो कार्तिक मास में स्नान करें उनको हे इन्द्र ! तुम हमारे लोक में पहुंचा दिया करो ॥२६॥ हे यमराज ! उनकी सब विघ्नों से

विश्रमंत्यप्सु सर्वदा ॥२३॥ अद्यप्रभृत्यहमपि भवामि जलमध्यगः ॥ भवंतोऽपि मया सार्धमायांतु समुनीश्वराः ॥२४॥ कालेऽस्मिन्ये प्रकुर्वंति प्रातःस्नानं नरोत्तमाः ॥ ते सर्वे यज्ञावभृथैः सुस्नाताः स्युर्नसंशयः ॥२५॥ ये कार्तिकव्रतं सम्यक् कुर्वंति मनुजाः सदा ॥ ते देहांते त्वया शक्र प्राप्या सद्भुवनं तदा ॥२६॥ विघ्नेभ्यो रक्षणं तेषां सम्यक्कार्यं तथा त्वया ॥ देया त्वया च वरुण पुत्रपौत्रादिसंततिः ॥२७॥ धनवृद्धिर्धनाध्यक्ष त्वया कार्या ममाज्ञया ॥ मम रूपधरः साक्षात् जीवन्मुक्तो भवेद्यतः ॥२८॥ आजन्ममरणाद्येन कृतमेतद्व्रतोत्तमम् ॥ यथोक्तविधिना सम्यक् स

रक्षा करना और हे वरुण ! तुम उनको पुत्रपौत्रादि सन्तान देते रहना ॥ २७ ॥ हे कुवेर ! मेरी आज्ञा से तुम उनके धन धान्यों को बढ़ाना क्योंकि वह मनुष्य मेरा रूप धारणकर जीवन्मुक्त होजाता है ॥२८॥ जन्म से मरण तक

विधि से जिसने यह व्रत किया हैं वह आप सबों का भी मान्य है ॥२९॥ एकादशी तिथि में आपलोगोंने हमको जगाया है इसीसे यह तिथि मान्य है और हमको बड़ी प्यारी हैं॥३०॥ ये दोनों व्रत विधिपूर्वक करने से मनुष्यों को जैसे मेरे समीप पहुंचाते हैं वैसे न तीर्थ व्रत और न कोई यज्ञ है॥३१॥ इति श्रीबलदेवशर्मकृते भा. टी. स. का. मा. तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

मान्यो भवतामपि ॥२९॥ एकादश्यां यतश्चाहं भवद्भिःप्रतिबोधितः ॥ अतश्चैषा तिथिर्मान्या सातीव प्रीतिदा मम ॥३०॥ व्रतद्वयं सम्यगिदं नरैः कृतं सान्निध्यकृद्येन तथाऽन्यदस्ति ॥ दानानि तीर्थानि व्रतानि यज्ञाः स्वर्लोकदान्येव तथा सुरोत्तमाः ॥३१॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यासंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः शफरी-तुल्यरूपधृक् ॥ ययौ तदांजलौ विंध्यवासिनः कश्यपस्य सः ॥ १ ॥ स तं कमंडलौ चिप्रं कृपया चिसवान्मुनिः ॥ तावत्स न ममौ तत्र ततः कूपे न्यवेशयत् ॥ २ ॥ तत्रापि न ममौ ताव-

नारदजी बोले। ऐसा कहकर विष्णुभगवान् मत्स्य का रूप धारण कर विन्ध्यवासी कश्यप मुनि की अंजली में आगये ॥१॥ मुनि ने दया से उसको अपने कमंडलु में रखदिया जब वह कमंडलु में न अट सका तो उसको कूप में

और उसमें भी न समाय सका तब उसको तालाव में और फिर तालाव में भी नहीं रह सका तब उसको समुद्र में छोड़ दिया ॥ २-३ ॥ फिर उस विष्णुस्वरूपी मत्स्य ने शंखासुर को मार दिया इसके अनन्तर उस शंख को हाथ में लेकर बदरिकाश्रम में चले गये ॥ ४ ॥ वहां पर सब ऋषियों को बुलाकर यह आज्ञा दी कि

त्कासारं प्रापयत्ततम् ॥ एवं स सागरे क्षिप्तस्तत्र सोऽपि व्यवर्धत ॥ ३ ॥ ततोऽवधीत्स तं शंखं विष्णुर्मत्स्यस्वरूपधृक् ॥ अथ तं स्वकरे धृत्वा बदरीवनमागमत् ॥ ४ ॥ तत्राभूय ऋषीन्सर्वानिद-माज्ञापयत्प्रभुः ॥ विष्णुरुवाच ॥ जलांतरविशीर्णास्ते यूयं वेदान्प्रमार्गथ ॥ ५ ॥ आनयध्वं च त्वरिताः सरहस्या जलांतरात् ॥ तावत्प्रयागे तिष्ठामि देवतागणसंयुतः ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ ततस्तैः सर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः ॥ उद्धृताश्च सबीजास्ते वेदा यज्ञसम-न्विताः ॥ ७ ॥ तेषु यावन्मितं येन लब्धं तावद्धि तस्य तत् ॥ स स एव ऋषिर्जातस्तत्तत्प्र-

इधर उधर बिखरे हुये वेदों को ढूँढो ॥ ५ ॥ और शीघ्रता से उनको जल में से रहस्य समेत निकालकर ले आओ तब तक मैं देवताओं के साथ प्रयाग में हूं ॥ ६ ॥ नारदजी पृथुराजा से बोले । तदनंतर तपोबल से संयुत सब मुनियों ने बीजों के सहित सब वेदमंत्रों का उद्धार किया ॥ ७ ॥ उन वेदों में जिन २ को जितना २

मिला वह २ उसका होगया और हे राजन् ! उसी दिन से उस २ के वे ही ऋषि कहलाये ॥८॥ संपूर्ण वेदों को लेकर मुनि सब प्रयाग में आये ब्रह्मा के साथ विष्णु को सब वेद दे दिये समस्त वेदों को प्राप्त कर ब्रह्मा बड़े हर्षित हुए और वहां पर देवता और ऋषियों के साथ अश्वमेध यज्ञ किया ॥ १० ॥ यज्ञ के अन्त में

भृति पार्थिव ॥ ८ ॥ अथ सर्वेऽपि संगम्य प्रयागं मुनयो ययुः ॥ विष्णवे सविधात्रे ते लब्ध्वा वेदान्न्यवेदयन् ॥ ९ ॥ लब्ध्वा वेदान्समग्रांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः ॥ अथजद्वाजिमेधेन देवर्षिगणसंयुतः ॥ १० ॥ यज्ञांते देवगंधर्वयक्षपन्नगगुह्यकाः ॥ निपत्य दंडवद्भूमौ विज्ञप्तिं चक्रूरंजसा ॥११॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव जगन्नाथ विज्ञप्तिं शृणु नःप्रभो ॥ हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो भव ॥१२॥ स्थानेऽस्मिन्द्रुहिणो वेदान् नष्टान्प्राप पुनस्त्वयम् ॥ यज्ञभागान्वयं प्राप्तास्त्वत्प्रसा-

देवता, गन्धर्व, यक्ष, पन्नग और गुह्यक विष्णु को भूमि में दंडवत् प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे ॥११॥ देवता बोले हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे प्रभो ! हमलोगों की प्रार्थना सुनिये यह हमलोगों के हर्ष का समय इससे आप हमलोगों को वर दीजिये ॥ १२ ॥ इस स्थान में नष्ट हुए वेद स्वयं ब्रह्मा को मिलै हैं और हे लक्ष्मीपते ! आपके प्रसाद से

हमलोगों को यज्ञ का भाग मिला है ॥ १३ ॥ यह स्थान आजसे पृथ्वी में सर्वश्रेष्ठ, पुण्य को बढ़ानेवाला, मुक्ति मुक्ति को देने वाला होय ॥१४॥ ब्रह्महत्यादि पापों को नाश करनेवाला यह समय भी महापुण्य और अक्षय फलको देनेवाला होय ॥ १५ ॥ विष्णु भगवान् बोले जो कुछ आपलोगों ने कहा है वह ही हमारा भी मत है जैसा तुमलोग

दाद्रमापते ॥ १३ ॥ स्थानमेतद्धि नः श्रेष्ठं पृथिव्यां पुण्यवर्धनम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चास्तु प्रसा-दाद्भवतः सदा ॥ १४ ॥ कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्नादिविशुद्धिकृत ॥ दत्ताक्षरकरं चास्तु वर-मेवं ददस्व नः ॥ १५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ममाप्येतद् व्रतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम् ॥ तथास्तु सुलभं त्वेतद् ब्रह्मक्षेत्रमिति प्रथम् ॥ १६ ॥ सूर्यवंशोद्भवो राजा गंगामत्रानयिष्यति ॥ सा सूर्यकन्यया चात्र कालिंद्या योगमेष्यति ॥ १७ ॥ यूयं च सर्वे ब्रह्माद्या निवसंतु मया सह ॥ तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ १८ ॥ दानं तपो व्रतं होमो जपपूजादिकाः क्रियाः ॥ अनंत

कहते हो वैसा ही होगा यह ब्रह्मक्षेत्र अति प्रसिद्ध होगा ॥ १६ ॥ सूर्यवंशी राजा भगीरथ गंगाजी को यहां लावेंगे और सूर्यकन्या यमुनाजी से यहां संगम होगा ॥१७॥ और ब्रह्मादिक देवगणों के साथ मैं भी यहां ही निवास करूंगा और " तीर्थराज " नाम से विख्यात होगा ॥ १८ ॥ और दान, व्रत, होम, जप और पूजादिक क्रिया यहां पर

अनन्त फल देनेवाले तथा हमारे समीप लेजाने वाले होंगे ॥ १९ ॥ अनेक जन्मों के किये हुये ब्रह्महत्यादिक पाप इस तीर्थराज के दर्शन से उसी समय विनाश हो जायँगे जो धीर मनुष्य मेरे समीप देह छोड़ेंगे वे मेरे ही शरीर में मिलकर उनका पुनर्जन्म नहीं होगा जो मनुष्य यहां पर अपने पितरोंका श्राद्ध करेंगे उनके पितर मेरे ही स्वरूप हो जायंगे ॥२२॥

फलदाः संतु मत्सान्निध्यकराः शुभाः ॥ १९ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि सप्तजन्मार्जितानि च ॥
दर्शनादस्य तीर्थस्य विनाशं यांतु तत्क्षणात् ॥२०॥ देहत्यागं च ये धीराः कुर्वंति मम सन्निधौ ॥
मत्तनुं प्रविशंत्येते न पुनर्जन्मिनो नराः ॥ २१ ॥ पितॄनुद्दिश्य ये श्राद्धं कुर्वंत्यत्र ममाग्रतः ॥
तेषां पितृगणाः सर्वे यांति ते मत्सरूपताम् ॥२२॥ कालोऽप्येष महापुण्यः फलदोऽस्तु सदा नृणाम् ॥
सूर्ये मकरगे प्राप्ते स्नायिनां पापनाशनः ॥ २३ ॥ मकरस्थे रवौ माघे प्रातः स्नानं प्रकुर्वताम् ॥
दर्शनादेव पापानि यांति सूर्याद्यथा तमः ॥ २४ ॥ सलोकत्वं समीपत्वं सारूप्यं च त्रयं क्रमात् ॥

और यह समय भी मनुष्यों को महापुण्य के फल को देनेवाला होगा और जो यहां मकर की संक्रान्ति में स्नान करेंगे उनके सर्व पाप नष्ट होवेंगे ॥२३॥ और मकर की संक्रांति माघमास में प्रातःकाल स्नान करनेवालों के दर्शनमात्र से ही पाप नष्ट होजायंगे जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नाश होता है ॥२४॥ माघमास में मकर की संक्रान्ति में स्नान

करनेवाले मनुष्यों को मैं सालोक्य (मेरे लोक में आना) सामीप्य (मेरे समीप रहना) सायुज्य (मेरे में मिल जाना इन तीनों प्रकार की मुक्ति दूंगा ॥ २५ ॥ और हे मुनिवरो ! तुम लोग मेरे बचन को सुनो कि मैं बदरीबन में सदा निवास करता हूं ॥२६॥ दूसरे स्थान में सैकड़ों वर्ष तपस्या करने से जो फल होता है वह यहां पर एक ही दिन

नृणां दास्याम्यहं स्नानैर्माघे मकरगे रवौ ॥२५॥ यूयं मुनीश्वराः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम ॥ बदरीवनमध्येऽहं सदा तिष्ठामि सर्वगः ॥ २६ ॥ अन्यत्रदशभिर्वर्षैस्तपसा प्राप्यते फलम् ॥ तत्र तद्दिवसैकेन भवद्भिः प्राप्यते सदा ॥ २७ ॥ स्थानस्य दर्शनं तस्य ये कुर्वंति नरोत्तमाः ॥ जीवन्मुक्ताः सदा तेषु पापं नैवावतिष्ठति॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ एवं देवान्देवदेवस्तदुक्त्वा तत्रैवांतर्धानमागात्सवेधाः ॥ देवाः सर्वेप्यंशकैस्तत्र तिष्ठंश्चांतर्धानं प्रापुरिंद्रादयस्ते ॥ २९ ॥ इमां कथां यः शृणुयान्नरोत्तमो यः श्रावयेद्वापि विशुद्धचेतसा ॥ स तीर्थराजं बदरीवनं यद्गत्वा फलं

में मिलेगा । २७॥ जो नरोत्तम उस स्थान का दर्शन करेंगे वे जीवन्मुक्त और उनके सब पाप नाश होवेंगे ॥ २८ ॥ सूतजी बोले ऐसे विष्णु भगवान् देवतों से कहकर ब्रह्मा के साथ अन्तर्ध्यान होगये और देवगण भी अपने २ अंशों से वहां रहकर वे भी अन्तर्ध्यान होगये ॥२९॥ जो नरोत्तम इसे शुद्ध चित्त से सुनै या सुनायेंगे वह तीर्थराज (प्रयाग)

तथा बदरिकाश्रम जाने का फल प्राप्त करेंगे ॥३०॥ इति श्रीबलदेवकृते का. मा. भा. टी. युते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
पृथुराजा बोले हे मुने ! तुमने कार्तिक और माघमास का बड़ा भारी फल कहा अब इसकी विधिपूर्वक स्नान की विधि तथा इनके नियम कहिये। और उद्यापन की विधि भी आप यथावत् कहिये। नारदजी बोले आपविष्णु के अंश

यत्समवाप्नुयाच्च ॥३०॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यासंवादे प्रयागवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ पृथुरुवाच ॥ महत्फलं त्वया प्रोक्तं मुने कार्तिकमाघयोः ॥ तयोः स्नानविधिं सम्यङ् नियमानपि नारद ॥ १ ॥ उद्यापनविधिं चैवयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ नारद उवाच ॥ त्वं विष्णोरंशसंभूतो नाज्ञातं विद्यते तव ॥ २ ॥ तथापि वदतःसम्यङ नियमानपि वैशृणु ॥ आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् ॥ ३ ॥ कार्तिकस्य व्रतानीह तस्यां कुर्यादतंद्रितः ॥ रात्र्यां तुर्यांशशेषायामुदतिष्ठेत्सदा व्रती ॥ ४ ॥ प्रागुदीचीं व्रजेद्धर्म्याद्बहिः सोदकभाजनः ॥ दिवा

से उत्पन्न हुए हैं यह बात आप जानते ही हैं तौ भी मैं यथावत् आप से नियम कहता हूं सो सुनिये ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥
आश्विनमास की शुक्लपक्ष की एकादशी से सावधान होकर कार्तिक का व्रत प्रारम्भ करे ॥४॥ व्रत करनेवाला रात्रिके

चौथे प्रहरमें उठ जलका पात्र लेकर ग्राम से बाहिर पूर्व या उत्तर दिशा में जाय ॥५॥ दिनमें अथवा संध्या समय कान पर जनेऊ चढ़ाय पृथ्वी पर तृणों को बिछाय शिर में वस्त्र लपेटे ॥६॥ और मुख अच्छी तरह बांध थूक और श्वास को रोककर मल और मूत्र का त्याग करै यदि रात्रि होय तो दक्षिणमुख होयकर बैठे ॥७॥ शिश्न को हाथ से थामकर उठै

संध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ॥५॥ अंतर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥ वक्त्रं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः ॥ ६ ॥ कुर्यान्मूत्रपुरीषे च रात्रौ वै दक्षिणामुखः ॥ गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्य तैर्जलैः ॥ ७ ॥ गंधलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतंद्रितः ॥ एका लिंगे करे तिस्र उभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम् ॥ ८ ॥ पंचापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥ एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥ ९ ॥ वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां च चतुर्गुणम् ॥ यद्दिवा विहितं

और मिट्टी तथा जल से धोवे बड़ी सावधानी के साथ गंध और लेप को नाश करनेवाली शौचक्रिया करै ॥ ८ ॥ एकवार लिंग में तीनवार हात में फिर दोनों में दो २ बार फिर पाँच वार गुदा में और दशवार बांये हाथ में और दोनों में सात बार मृत्तिका लगा २ कर धोवे ॥९॥ यह शौच गृहस्थियों के लिये है, ब्रह्मचारियों को दूना, वानप्रस्थ

को तिगुना और संन्यासियों को चौगुना शौच करना चाहिये जो शौच दिनमें कहा है उससे आधा रात्रि में करना ॥१०॥ इससे भी आधा रोगी और रोगी से आधा राह चलनेवाला करै शौचकर्म रहित पुरुष की सब क्रियायें निष्फल होती हैं ॥ ११ ॥ जो मनुष्य मुखशुद्धि नहीं करता उसके मन्त्र विफल हो जाते हैं इसलिये दन्त और जिह्वा को

शौचं तदर्द्धं निशि कीर्तितम् ॥१०॥ तदर्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि ॥ शौचकर्मविहीनस्य सकला निष्फलाः क्रियाः ॥११॥ मुखशुद्धिविहीनस्य न मंत्राः फलदायकाः ॥ दंतजिह्वाविशुद्धिं च ततः कुर्यात्प्रयत्नतः ॥१२॥ आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥ ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥१३॥ इति मंत्रं समुच्चार्य द्वादशांगुलया गृही ॥ समिधा क्षीरवृक्षस्य क्षयाहोपोषणं विना ॥१४॥ प्रतिपद्दर्शनवमी षष्ठी चार्कदिने तथा ॥ चंद्रसूर्योपरागे च न कुर्या

यत्न से शुद्ध करै ॥ १२ ॥ " हे वनस्पते ! आयु, बल, यश, तेज, प्रजा, पशु धन, वेदपाठकी शक्ति बुद्धि हमको दे " यह मंत्र दँतवन के समय का है । इस मंत्र को कहकर बारह अंगुल दूधवाले वृक्ष का दँतवन लेकर करै और श्राद्ध के दिन व्रत के दिन ॥ १४ ॥ प्रतिपदा, अमावस, नवमी, छठ, रविवार चंद्र सूर्य के ग्रहण में दन्तधावन न करै ॥

॥ १५ ॥ कँटैलवृक्ष, कपास, संभालू, पीपल, वड़, अरंड, और गंधहीन वृक्षों का दंतुवन न करै ॥१६॥ तदनन्तर पुष्प, गंध, ताम्बूल आदि लेके प्रसन्न चित्त से भक्ति सहित विष्णु और शिव के मन्दिर में जाय ॥१७॥ फिर देवता को पाद्य आदिक सामग्री अलग २ रखकर स्तुति और प्रणाम कर गीवादि मंगल करै ॥१८॥ ताल, वेणु,

दंतधावनम् ॥ १५ ॥ कंटकीवृक्षकार्पासीनिर्गुंडीब्रह्मवृक्षकाः ॥ वटैरंडविगंधाद्यान्वर्जयेद्दंतधावने ॥१६॥ ततो विष्णोः शिवस्यापि गृहं गच्छेत्प्रसन्नधीः ॥ पुष्पगंधान्सतांबूलान् गृहीत्वा भक्तितत्परः ॥१७॥ तत्र देवस्य पाद्यादीनुपचारान्पृथक् पृथक् ॥ कृत्वा स्तुत्वा पुनर्नत्वा कुर्याद्गीतादि मंगलम् ॥१८॥ तालवेणुमृदंगादिध्वनियुक्तान्सनर्तकान् ॥ पुष्पैर्गंधैः सतांबूलैर्गायकानपि चार्चयेत् ॥१९॥ देवालये गीतपरा यतस्ते विष्णुमूर्तयः ॥ तपांसि यज्ञदानानि कृतादिषु जगद्गुरोः ॥२०॥ तुष्टिदानि कलौ यस्माद् भक्त्या गानं प्रशस्यते ॥ क्व त्वं वससि देवेश मया पृष्टस्तु

मृदंग, आदिकों की व नाचनेवालों के साथ बजावै और पुष्प गन्ध तांबूलादिकों से गायकों का भी पूजन करै ॥१९॥ क्योंकि देवालय में गान करने वाले विष्णु की मूर्त्ति हैं जगद्गुरु विष्णु के सतयुगादि में तप, यज्ञ और दान प्रसन्न करनेवाले थे और कलियुग में भक्तिसहित गान ही श्रेष्ठ है हे राजन्! एक समय मैंने विष्णु भगवान् से पूछा था कि

आप कहां निवास करते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ तब भगवान् बोले हे नारद मैं वैकुण्ठ अथवा योगियों के हृदय में निवास नहीं करता किन्तु जहां पर मेरे भक्त मेरे गुण गान करते हैं वहां ही मैं बसता हूं ॥ २२ ॥ जो मनुष्य गंध पुष्पादिकों से मेरे भक्तों का पूजन करते हैं इससे हमको बड़ी प्रसन्नता होती है जैसी हमको हमारे पूजन से नहीं होत

पार्थिव ॥ विष्णुरेवं तदा प्राह मद्भक्तिपरितोषितः ॥२१॥ नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदयेऽथवा ॥ मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद ॥२२॥ तेषां पूजादिकं गंधपुष्पादि क्रियते नरैः ॥ तेन प्रीतिं परां यामि न तथा मत्प्रपूजनात् ॥२३॥ मत्पुराणकथां श्रुत्वा मद्भक्तानां च गायनम् ॥ निंदंति ये नरा मूढास्ते मद्वेष्या भवंति हि ॥२४॥ शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशाल्मलीभवैः ॥ अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्च्यस्तथाक्षतैः ॥२५॥ जपाकुंदशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः ॥ केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्च्यः शंकरस्तथा ॥२६॥ गणेशं तुलसीपत्रैर्दुर्गां नैव तु दूर्वया ॥ मुनि-

॥२३॥ जो मूर्ख मनुष्य मेरे पुराणों की कथा और मेरे भक्तों का गान सुनकर निन्दा करते हैं वे मेरे शत्रु हैं ॥२४॥ सिरीष, धतूरा, गिरिजा, चमेली, सेमर, अकवन और कनइल के फूल तथा अक्षतों से विष्णु की पूजा नहीं करनी चाहिये ॥२५॥ हुरहुर, मौलसिरी, सिरीष, जूही, मालती, केवड़े के फूलों से शिवकी पूजा न करै ॥२६॥ लक्ष्मी

की कामना वाला पुरुष तुलसीदल से गणेशजी की, दूबसे दुर्गाजी की, अगस्त्य के फूलों से सूर्य की पूजा न करै ॥२७॥ जिन देवताओं के लिये पूजा में जो २ पुष्प प्रशस्त हैं उन २ से पूजा करै इस प्रकार पूजा विधि समाप्त करके देवदेव विष्णु से क्षमा प्रार्थना करै ॥ २७ ॥ हे सुरेश्वर ! हे देव ! मैंने आपकी मंत्रहीन, क्रियाहीन, भक्तिहीन जो

पुष्पैस्तथा सूर्यं लक्ष्मीकामो न चार्चयेत् ॥ २७ ॥ एभ्योऽन्यानि प्रशस्तानि पूजायां सर्वदेव तु ॥ एवं पूजाविधिं कृत्वा देवदेवं क्षमापयेत् ॥ २८ ॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ॥ यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ २९ ॥ ततः प्रदक्षिणां कृत्वा दंडवत्प्रणिपत्य च ॥ पुनः क्षमाप्य देवेशं गायनाद्यं समापयेत् ॥३०॥ विष्णोः शिवस्यापि च पूजनं ये कुर्वंति सम्यङ् निशि कार्तिकस्य ॥ विधूतपापाः सह पूर्वजैस्ते प्रयांति विष्णोर्भवनं मनुष्याः ॥३१॥ इति श्रीप० कार्ति०

पूजा की है वह मेरी पूजा पूरी होय ॥ २९ ॥ तदनन्तर प्रदक्षिणा कर दण्डवत् प्रणाम करै और क्षमा प्रार्थना करके गायन आदि को समाप्त करै ॥ ३० ॥ जो मनुष्य शिव और विष्णु की विधिपूर्वक कार्त्तिक की रात्रि में पूजा करते हैं वे पापरहित होकर अपने पूर्वजों के साथ विष्णुलोक में जाते हैं ॥ ३१ ॥ इति पंचमोध्यायः ॥ नारद-

जी बोले । दो घड़ी रात बाकी रहने पर तिल, कुशा, अक्षत, गंध आदि लेकर और पवित्र होकर नदी आदिक जलाशय पर जाय ॥ १ ॥ नहर से दशगुनी नदी आदिक में और नदी आदिकों से संगम पर स्नान करने से दशगुना और तीर्थ में इनसे दूना फल प्राप्त होता है ॥ २ ॥ विष्णु का स्मरण करके स्नान का संकल्प करे फिर

कार्तिकव्रतकथनंनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ नाडीद्वयावशिष्टायां रात्र्यां गच्छेज्जलाशये ॥ तिलदर्भाक्षतैः पुष्पगंधाद्यैः सहितः शुचिः ॥ १ ॥ मानुषे देवखाते च नद्यामथ च संगमे ॥ क्रमाद्दशगुणं स्नानं तीर्थे तद्द्विगुणं स्मृतम् ॥ २ ॥ विष्णुं स्मृत्वा ततः कुर्यात् संकल्पं सवनस्य च ॥ तीर्थादिदेवताभ्यश्च क्रमादर्घ्यादि दापयेत् ॥ ३ ॥ अर्घ्यमंत्रः ॥ नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ॥ ४ ॥ वैकुंठे च प्रयागे च तथा बदरिकाश्रमे ॥ यतो विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा संनिदधे पदम् ॥ ५ ॥ अतो देवा अवन्तु नः

तीर्थ के देवताओं को क्रम से अर्घ्यादि देवै ॥ ३ ॥ अर्घ्य का मन्त्र—" कमलनाभ को नमस्कार है, जलशायी भगवान् को नमस्कार है, हे हृषीकेश ! आपको नमस्कार है, इस मेरे अर्घ्य को आप ग्रहण करिये ॥ ४ ॥ वैकुण्ठ, प्रयाग और बदरिकाश्रम में जहां विष्णु गये वहां तीन प्रकार से विष्णु ने अपना पद स्थापन किया ॥ ५ ॥ इसी कारण

जहां विष्णु ने अपना पद स्थापन किया वहां मुनि वेद यज्ञों के साथ सब देवता हमारी रक्षा करें ॥ ६ ॥ हे जनार्दन ! हे दामोदर ! आपकी प्रसन्नता के लिये मैं विधिपूर्वक कार्तिकमास में प्रातःकाल स्नान करूंगा ॥ ७ ॥ हे दामोदर ! मैं आपका ध्यान तथा नमस्कार करके इस जल में स्नान करने को उद्यत हूं आपके प्रसाद से मेरे पापनाश

यतो विष्णुर्विचक्रमे ॥ तैरेव सहितः सम्यङ् मुनिर्वेदमखान्वितैः ॥ ६ ॥ कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातः स्नानं जनार्दन ॥ प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ ७ ॥ ध्यात्वा नत्वा च देवेशं जलेऽस्मिन्स्नातुमुद्यतः ॥ तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु ॥ ८ ॥ अर्घ्यमंत्रः ॥ नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दानवेंद्रनिषूदन ॥ ९ ॥ स्मृत्वा भागीरथीं विष्णुं शिवं सूर्यं जले विशेत् ॥ नाभिमात्रे ततस्तिष्ठेद्व्रती स्नायाद्यथाविधि ॥१०॥ तिला-

होंय ॥८॥ हे हरे ! कार्त्तिकमास में विधिपूर्वक व्रत करनेवाला जो मैं हूं सो स्नान करता हूं मेरे दिये हुए अर्घ्य को राधा के साथ आप ग्रहण कीजिये ॥९॥ हे दैत्यों के स्वामियों को नाश करनेवाले हे श्रीकृष्ण ! पाप नाश करने वाले इस कार्त्तिक मास में नित्य नैमित्तिक कर्म द्वारा आपको दिये हुए अर्घ्य का ग्रहण करिये ॥१०॥ गंगा, विष्णु, शिव, सूर्य इनका स्मरण

कर जल में उतरे और नाभि पर्यन्त जल में खड़ा होकर व्रती विधि से स्नान करे ॥११॥ तिल और आमलों के चूर्ण से गृहस्थी और विधवा स्त्री तथा संन्यासी तुलसी के जड़ की मिट्टी से स्नान करे ॥१२॥ सप्तमी, अमावस, नवमी, दूज, दशमी, त्रयोदशी को आमला और तिल से स्नान करे ॥१३॥ प्रथम मलस्नान करके मंत्रस्नान फिर करे और स्त्री तथा शूद्र

मलकचूर्णेन गृही स्नानं समाचरेत् ॥ विधवास्त्रीयतीनां तु तुलसीमूलमृत्स्नया ॥ ११ ॥ सप्तमीदर्शनवमीद्वितीयादशमीषु च ॥ त्रयोदश्यां न वै स्नायात् धात्रीफलतिलैः सह ॥ १२ ॥ आदौ कुर्यान्मलस्नानं मंत्रस्नानं ततः परम् ॥ स्त्रीशूद्राणां न वेदोक्तैर्मंत्रैस्तेषां पुराणजैः ॥१३॥ स्नानमंत्राः ॥ त्रिधाऽभूद्देवकार्यार्थं यः पुरा भक्तभावनः ॥ स विष्णुः सर्वपापघ्नः पुनातु कृपयाऽत्र माम् ॥ १४ ॥ विष्णोराज्ञामनुप्राप्य कार्तिकव्रतकारकान् ॥ रक्षंति देवास्ते सर्वे मां पुनंतु सवासवाः ॥ १५ ॥ वेदमंत्राः सबीजाश्च सरहस्या मखान्विताः ॥ कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनंतु सवासवाः

वेदोक्त मंत्रों से स्नान न करें किन्तु पुराणोक्त मंत्रों से करें ॥१४॥ स्नानमंत्र ॥ जिस भक्तानुरागी भगवान् ने देवकार्य के लिये तीन प्रकार के रूप पहले धारण किये थे वे ही विष्णु भगवान् कृपा कर हमको पवित्र करें ॥१५॥ विष्णु की आज्ञा

से कार्त्तिकव्रतियों की इन्द्रादिक देवता रक्षा करें तथा पवित्र करें ॥१६॥ वेदमन्त्र, वीज, रहस्य और यज्ञ सहित सब वेदों के मंत्र, और कश्यपादिक मुनि तथा सब देवता हमको पवित्र करें ॥१७॥ गंगादिक नदियां सर्व तीर्थ नद, सातों समुद्र, और सब जलाशय हमको पवित्र करें ॥१८॥ अदिति आदिक पतिव्रता स्त्रियां, यक्ष, सिद्ध, सर्प, औषधि,

॥१६॥ गंगाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥ ससप्तसागराः सर्वे मां पुनंतु जलाशयाः ॥१७॥ पतिव्रतास्त्वदित्याद्या यक्षाः सिद्धाः सपन्नगाः ॥ ओषध्यः पर्वताश्चापि मां पुनंतु त्रिलोकजाः ॥१८॥ एभिः स्नात्वा व्रती मंत्रैर्हस्तन्यस्तपवित्रकः ॥ देवर्षिमानवान्पितॄंस्तर्पयेच्च यथाविधि ॥१९॥ यावंतः कार्तिके मासि वर्तंते पितृतर्पणे ॥ तिलास्तत्संख्यकाब्दानि पितरः स्वर्गवासिनः ॥२०॥ ततो जलाद्विनिष्क्रम्य शुचिर्वस्त्रावृतो व्रती ॥ प्रातःकालोदितं कर्म समाप्याच्यों हरिः पुनः ॥२१॥ तीर्थाधिदेवान्संस्मृत्य पुनरर्घ्यं प्रदापयेत् ॥ गंधपुष्पफलैर्युक्तो भक्त्या तत्पर-

पर्वत ये सब हमको पवित्र करें ॥१९॥ इन मंत्रों से स्नान करके व्रती हाथ में पवित्री धारण कर देवता, ऋषि, मनुष्य और पितरों का विधि से तर्पण करे ॥२०॥ कार्तिक मासमें पितृतर्पण के समय जितने तिल तर्पणमें देते हैं उतने ही वर्ष तक पितर स्वर्ग में निवास करते हैं ॥२१॥ फिर व्रती जल से बाहर निकलकर शुद्ध वस्त्र धारण करे और प्रातः

काल के सब कर्मों को समाप्त करके फिर विष्णु की पूजा करे ॥ २२ ॥ तीर्थ और देवताओं का स्मरण कर भक्तिपूर्वक एकाग्र चित्त से गंध, पुष्प और फल सहित फिर अर्घ्य देवै ॥ २३ ॥ अर्घ्यमंत्र ॥ मैंने विधिपूर्वक कार्तिक मास में स्नान किया है सो मेरे दिये हुए अर्घ्य को राधिका के साथ ग्रहण करिये ॥ २४ ॥ फिर

मानसः ॥ २२ ॥ अर्घ्यमंत्रः ॥ व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ २३ ॥ ततश्च ब्राह्मणान् भक्त्या पूजयेद्वेदपारगान् ॥ गंधैः पुष्पैः सतांबूलैः प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥ २४ ॥ तीर्थानि दक्षिणे पादे वेदास्तन्मुखमाश्रिताः ॥ सर्वांगेष्वाश्रिता देवाः पूजितास्ते तदर्चया ॥२५॥ अव्यक्तरूपिणो विष्णोः स्वरूपं ब्राह्मणा भुवि ॥ नावमान्या नो विरोध्याः कदाचिच्छुभमिच्छता ॥२६॥ ततो हरिप्रियां देवीं तुलसीमर्चयेद्व्रती ॥

गंध, पुष्प और ताम्बुलादिकों से वेदपाठी ब्राह्मणों की भक्तिपूर्वक पूजा करे और बारम्बार प्रणाम करै ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि ब्राह्मणों के दहिने चरण में तीर्थ, मुख में वेद, और सब अङ्गों में देवता बसते हैं इन ब्राह्मणों की पूजा करने से मेरी पूजा हो जाती है ॥ २६ ॥ पृथ्वी में अप्रकट रूप से ब्राह्मण विष्णु के

समान हैं इनका अनादर या विरोध कल्याण की इच्छा करनेवाले न करें ॥ २७ ॥ फिर एकाग्रचित्तसे विष्णु भगवान् की प्रिया तुलसी पूजा, प्रदक्षिणा और प्रणाम करे ॥ २८ ॥ हे तुलसी ! देवताओं ने तुम्हें बनाया है और मुनीश्वरों ने तुम्हारी पूजा की है अतः हे विष्णुप्रिये ! तुमको नमस्कार है और तू मेरे पापों का नाश कर फिर पुराणोक्त विष्णुजीकी

प्रदक्षिणां नमस्कारान्कुर्यादेकाग्रमानसः ॥२७॥ देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चितासि मुनीश्वरैः ॥ नमो नमस्ते तुलसि पापं हर हरिप्रिये ॥२८॥ ततो विष्णुकथां श्रुत्वा पौराणीं स्थिरमानसः ॥ पुनस्तान्ब्राह्मणांश्चैव पूजयेद्भक्तिमान् व्रती ॥ २९ ॥ एवं सर्वविधिं सम्यक् पूर्वोक्तं भक्तिमान्नरः ॥ करोति यः स लभते नारायणसलोकताम् ॥ ३० ॥ रोगापहं पातकनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम् ॥ मुक्तेर्निदानं न हि कार्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहास्ति शोभनम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्म पु० कार्तिक मा० श्रीकृष्णसत्यासं० कार्तिकव्रतकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ नारदउवाच ॥

कथा ॥ २९ ॥ एकाग्रचित्त से सुनकर फिर व्रती उन ब्राह्मणों की पूजा करे ॥३०॥ इस प्रकार भक्तियुत होकर पूर्वोक्त विधि से जो सब विधि करता है उसकी सालोक्य मुक्ति होती है रोग और पातकों को नष्ट करनेवाला श्रेष्ठ बुद्धि को देनेवाला मुक्तिदाता इन विष्णु के प्रिय कार्तिक के व्रती को छोड़कर दूसरा व्रत उत्तम नहीं है ॥३१॥ इति षष्ठोऽध्यायः

नारदजी बोले कार्तिक व्रत करनेवाले मनुष्यों को जो नियम करने चाहिये उनको हे महाराज ! मैं संक्षेप से कहता हूं सुनो ॥ १ ॥ कार्तिकव्रत करनेवाला सब प्रकार के मांस, सहद, राई, कांजी मदकारी द्रव्य भोजन न करे ॥ २ ॥ और कार्तिक व्रती पराये का अन्न, किसी से वैर, तीर्थको छोड़ परदेश गमन छोड़ देवे ॥३॥ और देवता, वेद, ब्राह्मण,

कार्तिकव्रतिनां पुंसां नियमा ये प्रकीर्तिताः ॥ तान् शृणुष्व महाराज कथ्यमानान् समासतः ॥ १ ॥ सर्वामिषाणि मांसं च क्षौद्रं सौवीरकं तथा ॥ राजिकोन्मादिकं चापि नैवाद्यात्कार्तिकव्रती ॥ २ ॥ परान्नं च परद्रोहं परदेशगतं तथा ॥ तीर्थं विना सदैवेह वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥ ३ ॥ देववेदद्विजातीनां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निंदां वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥ ४ ॥ प्राण्यंगमामिषं चूर्णं फलं जंबीरमामिषम् ॥ धान्ये मसूरिका प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा ॥ ५ ॥ अजागोमहिषीक्षीरादन्यत्दुग्धादिचामिषम् ॥ द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा ॥ ६ ॥ ताम्रस्थितं

गुरु, व्रतधारी, स्त्री, राजा और बड़े लोगों की निन्दा कार्तिकव्रती त्याग देवै ॥ ४ ॥ और दाल, तिल, तैल, बजार से मोल लिया हुआ पक्वान्न, भावदुष्ट तथा शब्द से दूषित अन्न कार्तिकव्रती न खाय ॥५॥ प्राणियों का मांस, चूना, जंमीरी निम्बू, मसूर तथा बासी अन्न न खाय ॥ ६ ॥ बकरी, गौ और भैंसी के दूध के सिवाय दूसरे दूध मांस

के समान जाने और ब्राह्मण से खरीद सब रस और सांभर नोन न खाय ॥ ७ ॥ तामे के पात्र में रक्खा हुआ पंचगव्य, बहुत छोटे जलाशय का जल, और केवल अपने ही लिये बनाया हुआ अन्न मांस के सदृश है ॥ ८ ॥ और कार्त्तिकव्रती ब्रह्मचर्य से रहै पृथ्वी पर सोवे सायंकाल में एकवार भोजन करै ॥ ९ ॥ एक नरक चतुर्दशी को

पंचगव्यं जलं पल्वलसंस्थितम् ॥ आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं चोच्यते बुधैः ॥ ७ ॥ ब्रह्मचर्यमधःशय्यां पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ चतुर्थकाले भुंजानः कुर्यादेवं सदा व्रतम् ॥ ८ ॥ नरकस्य चतुर्दश्यां तैलाभ्यंगं च कारयेत् ॥ अन्यत्र कार्तिके मासि तैलस्नानं विवर्जयेत् ॥ ९ ॥ पलांडुं वृंतकं शृंगं छत्राकं गृञ्जरं तथा ॥ नालिकां मूलकं चैव वर्जयेत्कार्तिकव्रती ॥१०॥ अलाबुं चापि वृंताकं कूष्मांडं बृहतीद्वयम् ॥ श्लेष्मातकं कपित्थं च वर्जयेद्वैष्णवव्रती ॥ ११ ॥ एभिर्दृष्टं श्वकाकैश्च सूतकान्नं च यद्भवेत् ॥ द्विःपाचितं च दग्धान्नं नैवाद्याद्वैष्णवव्रती ॥ १२ ॥ रजस्वलां

छोड़कर अन्य तिथियों में कार्त्तिकव्रती तेल न लगावै ॥ १० ॥ घीया (कद्दू), बैंगन, कोहड़ा, कटेरी के फल, तरबुज और कैथ इनको कार्त्तिकव्रती न खाय ॥ ११ ॥ रजस्वला स्त्री, म्लेच्छ, पतित, ब्राह्मणद्रोही, और वेद मार्ग से जो बाहर हैं इनसे कार्त्तिकव्रती संभाषण न करै ॥ १२ ॥ ऊपर कहे हुए मनुष्य तथा कव्वों से देखा हुआ,

सूतक का, दो बार पका तथा जला हुआ अन्न न खाय ॥१३॥ परिवा को कोहड़ा दूज, को फटेहरी, तीजको तरुणी, चौथ को मूली, पंचमीको नारिकेल, छठ को तरबूज, सप्तमी को आंवला अष्टमी को नारिकेल, दशमी को कदुआ, एकादशीको परवला, द्वादशी को बैर, त्रयोदशी को बैंगन, चतुर्दशी को हरफारेवड़ी और पूर्णिमा को शाका ये सब

त्यजम्लेच्छपतितान्व्रतकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेत्सर्वदा व्रती ॥ १३ ॥ एतानि वर्जयेन्नित्यं व्रती सर्व व्रतेष्वपि ॥ कृच्छ्रादींश्च प्रकुर्वीत स्वशक्त्या विष्णुतुष्टये ॥१४॥ क्रमात्कूष्मांडबृहती तरुणीमूलकं तथा ॥ श्रीफलं च कलिंगं च फलं धात्रीभवं तथा ॥ १५ ॥ नारिकेलमलाबुं च पटोलं बृहतीफलम् ॥ चर्मवृंताकिलवलीशाकुन्तलसिजं तथा ॥ १६ ॥ शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु ॥ धात्रीफलं रवौ तद्वद्वर्जयेत्सर्वदा व्रती ॥ १७ ॥ एभ्योऽन्यद्वर्जयेत्किंचिद्विष्णुव्रतपरायणः ॥ तत्पुनर्ब्राह्मणे दत्त्वा भक्षयेत्सर्वदा व्रती ॥१८॥ एवमेव हि माघेऽपि कुर्याच्च नियं-

शाक इन तिथियों में कार्त्तिकव्रती न खाय और रविवार को आंवला सर्वदा ही न खाय ॥१४॥१५॥१६॥१७॥ इन शाकों से दूसरा शाक ब्राह्मणों को देकर खाय ॥ १८ ॥ यही नियम माघ मास में भी व्रती करें देवउठान

एकादशी में कहा हुआ नियमानुसार जागरण करें ॥ २० ॥ पृथ्वी में मुक्ति भुक्ति देनेवाले जितने क्षेत्र हैं वे सब कार्तिक व्रती के शरीर में निवास करते हैं ॥ २२ ॥ कार्तिक व्रत करने वाले को विष्णु की आज्ञा से इन्द्रादिक देवता जैसे राजा की रक्षा करते हैं वैसे ही रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥ जहां विष्णु के व्रत करनेवाला मनुष्य रहता है वहां

मान्व्रती ॥ हरेश्च जागरं तत्र प्रबोधोक्तं च कारयेत् ॥१९॥ यथोक्तकारिणं दृष्ट्वा कार्तिकव्रतिनं नरम् ॥ यमदूताः पलायन्ते गजाः सिंहार्दिता यथा ॥२०॥ वरं विष्णुव्रतं ह्येतत् न यज्ञव्रतयाजकाः ॥ यज्ञकृत्प्राप्नुयात्स्वर्गं वैकुंठं कार्तिकव्रती ॥ २१ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदानीह यानि क्षेत्राणि भूतले ॥ वसन्ति तानि तद्देहे कार्तिकव्रतकारिणः ॥ २२ ॥ दुःस्वप्नं दुष्कृतं किंचिन्मनोवाकायसंभवम् ॥ कार्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा विलयं याति तत्क्षणात् ॥ २३ ॥ कार्तिकव्रतिनः पुंसो विष्णुवाक्यप्रणोदिताः ॥ रक्षां कुर्वन्ति शक्राद्या राजानं किंकरा यथा ॥२४॥ विष्णुव्रतकरो नित्यं यत्र व्रजति पूजितः ॥ ग्रहभूत पिशाचाद्या नैव तिष्ठन्ति तत्रवै ॥२५॥ कार्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः ॥ नसमर्थो भवेद्वक्तुं

ग्रह भूत और पिशाच आदि नहीं रहने पाते ॥ २४ ॥ विधिपूर्वक व्रत करने वाले के पुण्य को चतुर्मुख ब्रह्मा भी नहीं कह सकते ॥ २५ ॥ पाप को नाश करनेवाले सत्पुत्र पौत्र धन, और धान्य बढ़ाने वाले कार्तिक व्रतों

को जो करता है उसको तीर्थ में जाना और सेवा करने से क्या प्रयोजन है ॥२६॥ इति श्री का० मा० भा० टी० युते ७ सप्तमोध्यायः ॥ नारदजी बोले हे राजन् ! अब मैं कार्तिक व्रत की उद्यापन विधि संक्षेप से कहता हूं सो सुनो ॥१॥ कार्तिक शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन व्रत की पूर्णता के लिये और विष्णु की प्रसन्नता के निमित्त उद्यापन करे

ब्रह्मापि हि चतुर्मुखः ॥२६॥ विष्णुव्रतं सकलकल्मषनाशनं च सत्पुत्रपौत्रधनधान्यविवृद्धिकारि ॥ ऊर्जव्रतं सनियमं कुरुते मनुष्यः किं तस्य तीर्थपरिशीलनसेवया च ॥ २७ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यासंवादे कार्तिकव्रतकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ नारदउवाच ॥ अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं नृप ॥ तं शृणुष्वमयाख्यातं सविधानं समासतः॥१॥ ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ व्रतपूर्णफलार्थं च विष्णुप्रीत्यर्थमेव च ॥२॥ तुलस्यामुपरिष्टात्तु कुर्यान्मंडपिकां तथा ॥ सुतोरणांचतुर्द्वारांपुष्पचामरशोभिताम् ॥ ३ ॥ द्वारेषुद्वारपालांश्च पूजयेन्मृन्मयान्पृथक् ॥ पुण्यशीलंसुशीलं च जयं विजयमेवच ॥४॥ तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमुत्तमम् ॥ चतुर्भिर्वर्णकैः

॥ २ ॥ तुलसी के ऊपर सुन्दर बन्दनवार सहित चार दरवाजों का, पुष्प और चवर से सुशोभित मंडप बनावै ॥३॥ और मृत्तिका के बनाये हुए पुण्यशील, सुशील जय विजय इन चारों द्वारपालों की चारों द्वारों पर पृथक्२ पूजा करै ॥४॥

तुलसी की जड़ के समीप सर्वतोभद्र चार रंगों से सुन्दर शोभायुक्त बनावै ॥ ५ ॥ उसके ऊपर पंचरत्न और नारिकेल सहित कलश की स्थापना करे ॥ ६ ॥ उसके ऊपर शंख चक्र गदा पद्म और पीताम्बरधारी, लक्ष्मी सहित विष्णु की पूजा करे ॥७॥ व्रती, इन्द्रादि लोकपालों की मंडल में पूजा करे, द्वादशी तिथिमें विष्णु जागे, त्रयोदशी में

सम्यक्शोभाढ्यं समलंकृतम् ॥ ५ ॥ तस्योपरिष्टात्कलशं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥ महाफलेन सहितं शुभं तत्र निधाय च ॥ ६ ॥ पूजयेत्तत्र देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ कौशेयपीतवसनं युक्तं जलधि-कन्यया ॥७॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च मण्डले पूजयेद्व्रती ॥ द्वादश्यां प्रतिबुद्धोऽसौ त्रयोदश्यां युतो सुरैः ॥८॥ दृष्टोऽर्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तिथाविह ॥ तस्यामुपवसेद्भक्त्या शान्तः प्रयतमा-नसः ॥९॥ पूजयेद्देवदेवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ उपचारैः षोडशभिर्नानाभक्तसमन्वितैः ॥ १० ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात् गीतवाद्यादिमङ्गलैः ॥ गीतं कुर्वन्ति ये भक्त्या जागरे चक्रपाणिनः॥११॥

देवताओंने दर्शन किये और चतुर्दशी में देवताओंने पूजा की इसी से विष्णु की पूजा चतुर्दशी तिथि में करनी चाहिये और शान्त चित्त से इसी दिन उपवास करे ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुवर्ण की प्रतिमा बनाकर षोडशोपचार तथा विविध नैवेद्या-दिकों से विष्णु की गुरु की आज्ञानुसार पूजा करे॥ १० ॥ नानाप्रकार के गीत वाद्य और मंगल से रात्रि में जागरण

करे फिर प्रातःकाल नित्य क्रिया करे ॥ ११ ॥ स्थिर चित्त से होम करके ब्राह्मणों को भोजन करवाय यथाशक्ति दक्षिणा दे ॥ १२ ॥ ऐसे जिसने वैकुण्ठ चतुर्दशी में उपवास व्रत किया है वह नर वैकुण्ठ में जाता है ॥ १३ ॥ वैकुण्ठ चतुर्दशी का माहात्म्य शेषजी भी सैकड़ों वर्षों में नहीं कह सकते ॥ १४ ॥ जो मनुष्य जागरण में विष्णु के

जन्मान्तरशतोद्भूतैस्ते मुक्ताः पापसंचयैः ॥ नराणां जागरे विष्णोर्गीतं नृत्यं प्रकुर्वताम् ॥ १२ ॥
गोसहस्रं च ददतां समं फलमुदाहृतम् ॥ गीतनृत्यादिकं कुर्वन् दर्शयन्कौतुकानि च ॥ १३ ॥
पुरतो वासुदेवस्य रात्रौ यो जागृयाद्धरेः ॥ पठन्विष्णुचरित्राणि यो रञ्जयति वैष्णवान् ॥ १४ ॥
मुखेन कुरुते वाद्यं स्वेच्छालापांश्च वर्जयेत् ॥ भावैरेतैर्नरो यस्तु कुरुते हरिजागरम् ॥ १५ ॥ दिने दिने तस्य पुण्यं तीर्थकोटिसमं स्मृतम् ॥ ततस्तु पौर्णिमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥१६॥
त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या च निवेदयेत् ॥ दशान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपधरोद्यतः ॥१७॥

भजन गाते हैं सैकड़ों वर्षों के किये हुए पापों से छूट जाते हैं ॥ १५ ॥ नारायण के आंगन में हरिभजन और जो नृत्य करते हैं उनको सहस्र गोदान का फल होता है ॥ १६ ॥ जो विष्णु के संमुख गीत नृत्य और खेल तमासे रात्रि में जागरण के समय दिखाते हैं और जो विष्णु के चरित्रों को पढ़ते हैं उनके पुण्य फल में उनको विष्णु

सालोक्य मुक्ति देते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ जो मुख से वंशी आदिक बजाते हैं और वृथा बकवाद नहीं करते इसप्रकार के भावों से जो हरिजागरण करते हैं उनका पुण्य दिन दिन करोड़ों तीर्थों के समान होता है ॥ १९ ॥ फिर पौर्णमासी को रात्रि को ३० ब्राह्मणों को अथवा एक ही को भोजन करावे ॥ २० ॥ जिससे विष्णु वरों

अस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम् ॥ अतस्तान्भोजयेद्विप्रान् पायसान्नेन वै व्रती ॥ १८॥ अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम् ॥ प्रीत्यर्थं तव देवस्य देवानां च पृथक् पृथक् ॥१९॥ दक्षिणां च यथाशक्त्या प्रदद्यात्प्रणमेच्च तान् ॥ पुनर्देवं समभ्यर्च्य देवांश्च तुलसीं तथा ॥ २० ॥ ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिवद्व्रती ॥ गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्रालंकरणादिभिः ॥ २१ ॥ सपत्नीकं समभ्यर्च्य तांश्च विप्रान्क्षमापयेत् ॥ प्रार्थनामंत्राः ॥ युष्मत्प्रसादाद्देवेशः प्रसन्नोऽस्तु सदा मम ॥ २२ ॥ व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया ॥ तत्सर्वं नाशमायातुस्थिरा

को देकर मत्स्यरूप हुए इसलिये इसतिथि में दान होम जप जो कुछ किया जाय वह अक्षय होता है ॥ २१ ॥ इसी कारण खीर से ब्राह्मणों को भोजन करवावे और "अतो देवा" इस ऋचा से तिल और खीर से होम करे ॥ २२॥

देवदेव::विष्णु की तथा देवताओं की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मणों को दक्षिणा दे और प्रणाम करे ॥२३॥ फिर विष्णु की पूजा कर देवता, तुलसी और कपिला गौ की पूजा कार्तिक व्रती सस्त्रीक करे ॥ २४ ॥ व्रत के उपदेश करने वाले गुरु की वस्त्र आभूषणादिकों से पूजा कर उन ब्राह्मणों से क्षमा प्रार्थना करे ॥ २५ ॥ प्रा० मं० आप लोगों के प्रसाद

मे चास्तु संततिः ॥ २३ ॥ मनोरथाश्च सफलाः सन्तु नित्यं ममार्चया ॥ देहान्ते वैष्णवं स्थानं प्राप्नुयाम्यतिदुर्लभम् ॥ २४ ॥ इति क्षमाप्य तान्सर्वान् प्रसाद्य च विसर्जयेत् ॥ तामर्चां गुरवे दद्याद्धवायुक्तां तदा व्रती ॥ २५ ॥ ततः सुहृद्गुरुयुतः स्वयं भुञ्जीत भक्तिमान् ॥ कार्तिकेवाथ तपसि विधिरेवंविधः स्मृतः ॥ २६ ॥ एवं यः कुरुते सम्यक् कार्तिकस्य व्रतं नरः ॥ विपाप्मा सर्व-कामाढ्यो विष्णुसान्निध्यगो भवेत् ॥२७॥ सर्वव्रतैः सर्वतीर्थैः सर्वदानैश्च यत्फलम् ॥ तत्कोटिगुणितं ज्ञेयं सम्यगस्य विधानतः ॥२८॥ ते धन्यास्ते सदा पूज्यास्तेषां च सफलो भवः ॥ विष्णुभक्तिरता

से मेरे पर विष्णु सदा प्रसन्न रहें और इस व्रत से सात जन्मों के मेरे पाप नष्ट हो जाय और मेरी सन्तान चिरजी-विनी होय और इस पूजा से मेरे सकल मनोरथ पूर्ण होय ॥ २६ ॥ २७ ॥ और मरने पर अतिदुर्लभ वैकुण्ठ लोक प्राप्ति होय ॥ २८ ॥ ऐसे ब्राह्मणों से क्षमा प्रार्थना कर और उनको प्रसन्न कर बिदा करे और इस पूजा की सा-

मथी को गौ के साथ गुरु को देदे ॥ २९ ॥ तदनन्तर मित्र भाई बन्धुओं के साथ भक्ति युत होकर आप भोजन करे कार्तिक अथवा माघमास के उद्यापन की विधि इसी प्रकार है ॥ ३० ॥ ऐसे जो मनुष्य कार्तिक के व्रत करता है वह पाप रहित सब कामना सहित होकर विष्णुलोक में जाता है ॥ ३१ ॥ जो फल सब तीर्थ, सर्वदान, सर्व व्रत करने से होता है उससे करोड गुना पुण्य इस कार्तिक मास के विधान से होता है ॥ ३२ ॥ वे धन्य हैं, वे ही पूज्य हैं,

येस्युः कार्तिकव्रतकारिणः ॥ २९ ॥ देहस्थितानि पापानि कम्पं यान्ति च तद्भयात् ॥ क्व यास्यामो भवत्येष यद्यूर्जव्रतकृन्नरः ॥ ३० ॥ इत्यूर्जव्रतनियमाञ्छृणोति भक्त्या यो वै तान्कथयति वैष्णवाग्रतोऽपि ॥ तौ सम्यग्व्रतनियमात्फलं भवेद्यत्तत्सर्वं कलुषविनाशनं लभन्ते ॥ ३१ ॥ इति श्री पद्मपु० कार्ति० श्रीकृष्णसत्यासंवादे उद्यापनविधिकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पृथुरुवाच ॥

और उन्हीं का संसार भी सफल है जिन्होंने विष्णु भक्ति में तत्पर होकर कार्तिक के व्रत किये हैं ॥ ३३ ॥ कार्तिक व्रत करने वाले के भय से उसके देहस्थित पाप कांपते हुए इधर उधर स्थान ढूंढते फिरते हैं कि अब हम लोग कहां जांय ॥ ३४ ॥ इन पूर्वोक्त व्रत के नियमों को जो भक्ति से सुनता है या वैष्णवों के संमुख कहता है ये दोनों जो जो इस व्रत के नियमों से फल होते हैं उन सब के फल प्राप्त करते हैं और उनके सब पाप नष्ट होते हैं ॥३५॥

इति श्री का० मा० भा० टी० अष्टमोध्यायः ॥८॥ पृथुराजा बोले हे ब्रह्मन् ! जो आपने कार्तिक व्रतकी कथा विस्तार से कही वहाँ तुलसी के मूल में जो विष्णु भगवान् की पूजा कही है ॥ १ ॥ इसीसे मैं तुलसी के माहात्म्य को पूछने को इच्छा करता हूं कैसे वह तुलसी भगवान् विष्णु को अति प्यारी हुई ॥ २ ॥ वह कैसे किस स्थान में उत्पन्न

यत्त्वया कथितं ब्रह्मन् व्रतमूर्जस्य विस्तरात् ॥ तत्र या तुलसीमूले विष्णोः पूजा त्वयोदिता ॥१॥ तेनाहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम् ॥ कथं सातिप्रिया तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २ ॥ कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्स्थाने च नारद ॥ एवं ब्रूहि समासेन सर्वज्ञोऽसि मतो मम ॥३॥ नारद उवाच ॥ शृणु राजन्नवहितो माहात्म्यं तुसलीभवम् ॥ सेतिहासं पुरावृत्तं तत्सर्वं कथयामिते ॥४॥ पुरा शक्रः शिवं द्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम् ॥ सर्वदेवः परिवृतो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ ५ ॥ यावद्गतः

हुई हे नारदजी आप सब जानते हैं यह आप संक्षेप से कहिये ॥ ३ ॥ नारदजी बोले पूर्व में सब देवता और अप्स-रागणों के साथ इन्द्र महादेवजी के दर्शन के लिये कैलास में गये ॥ ४ ॥ जब इन्द्र वहां गये तब कैलास के द्वार पर भयंकर रूप दाढ और मुख के पुरुष को देखा इन्द्रने उससे पूछा तुम कौन हो ॥ ५ ॥ और महादेवजी कहां गये

इसप्रकार वारंवार पूछने पर भी उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ ६ ॥ तब इन्द्र हाथ में वज्र उठाकर और क्रोधित हो और उसको धमकाता हुआ बोला इन्द्र ने कहा कि वारवार मेरे पूछने पर भी तुमने उत्तर नहीं दिया ॥ ७ ॥ इसलिये हे दुष्ट तुमको मैं वज्रसे मारताहूँ देखता हूं कि अब तेरी कौन रक्षा करता है ऐसा कहकर इन्द्रने उस पर वज्र

शिवगृहं तावत्तत्र स दृष्टवान् ॥ पुरुषं भीमकर्माणं दंष्ट्राननविभीषणम् ॥ ६ ॥ स पृष्टस्तेन कस्त्वं भोः क्व गतो जगदीश्वरः ॥ एवं पुनः पुनः पृष्टः स तदा नोक्तवान्नृप ॥७॥ ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्यर्यवचोऽब्रवीत् ॥ रे मया पृच्छ्यमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि ॥८॥ अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते ॥ इत्युदीर्य ततो वज्री वज्रेणाभ्यहनद्दृढम् ॥९॥ तेनास्य कण्ठो नालत्वमगाद्वज्रं च भस्मताम्॥ततो रुद्रः प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव ॥ १० ॥ दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ॥ इन्द्रं च दण्डवद्भूमौ कृत्वा स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ ११ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ नमो देवाधिपतये

प्रहार किया ॥ ८ ॥ इसीसे इसका कंठ नीला और वज्र भस्म होगया तबतो रुद्र भगवान् अपने तेजसे इन्द्रको जलाने लगे ॥ ९ ॥ यह दशा देखकर शीघ्रता से बृहस्पति ने हाथ जोड़ा और इन्द्रको दंडवत् पृथ्वी पर गिराकर स्तुति करने लगे ॥ १० ॥ इन्द्र बोले देवाधिदेव, त्र्यंबक, त्रिपुरारि, शर्व और अंधकासुर के नाशक को नमस्कार है ॥ ११ ॥

विरूप अतिरूप, बहुरूप, शंभु, यज्ञविध्वंसक, यज्ञफलदाता, कालान्तक, काल, कृष्णसर्पधारी ब्रह्मके शिरको छेदनकारी ब्राह्मण के हितकर को नमस्कार है॥१२॥नारदजी बोले इस प्रकार बृहस्पतिने जब महादेवजी की स्तुति करी तब तीनोंलोकों को भस्म करने में समर्थ अपने नयनकी ज्वालाको रोकते हुए बृहस्पतिसे बोले ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन्

त्र्यम्बकाय कपर्दिने ॥ त्रिपुरघ्नाय शर्वाय नमोऽन्धकनिषूदिने ॥१२॥ विरूपायातिरूपाय बहुरूपाय शंभवे ॥ यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने ॥१३॥ कालान्तकाय कालाय कालभोगिधरायच ॥ नमो ब्रह्मशिरोहन्त्रे ब्रह्मण्यायनमोनमः ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ एवंस्तुतस्तदा शंभुर्धिषणेन जगादतम् ॥ सहस्रनयनज्वाला त्रिलोकीदहनक्षमः ॥ १५ ॥ वरं वरय भो ब्रह्मन् प्रीतः स्तुत्याऽनया तव ॥ इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज ॥ १६ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देव त्वं पाहीन्द्रं शरणागतम् ॥ अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः ॥ १७ ॥ ईश्वर

इस तुम्हारी स्तुति से मैं प्रसन्न हुआ वर मांगो और आजसे इन्द्रके जीवदान दिलानेसे जीव नामसे विख्यात होवोगे ॥१५ बृहस्पति बोले हे देव यदि आप प्रसन्न हैं तो शरणागत इन्द्रकी रक्षा करिये और यह इस मस्तकके नेत्रअग्निको ठंढी करिये ॥१६॥ रुद्र बोले नेत्राग्नि फिर कैसे भीतर जायगी इसको कहीं दूर पर फेंकदूं जिसमें इन्द्रको पीड़ा न दे ॥ १७ ॥

नारदजी बोले ऐसा कह कर उस अग्नि को हाथ में लेकर लवण समुद्र में फेंक दिया फिर वह अग्नि गंगासागर के संगम पर जाकर पड़ी ॥ १८ ॥ वह अग्नि गिरते ही बालक स्वरूप होगई और बालक रोने लगा उसके रोने के शब्द से वारम्बार पृथ्वी कांपने लगी ॥ १९ ॥ और स्वर्ग से लेकर सत्यलोक तक सब लोक बहिरे होगए इस शब्द को सुन

उवाच ॥ पुनः प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं शिखी । एवं त्यद्धयाम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैष पीडयेत् ॥ ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा प्राक्षिपल्लवणार्णवे ॥ सोऽपतत्सिन्धुगङ्गायाः साग-रस्यच संगमे ॥ १९ ॥ तावत्स बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोदच ॥ रुदतस्तस्य शब्देन प्राकम्पद्धरणी मुहुः ॥२०॥ स्वर्गाद्याः सत्यलोकान्तास्तत्स्वनाद्बधिरीकृताः ॥ श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति विस्मितः ॥ २१ ॥ तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं स ददर्श ह ॥ दृष्ट्वा ब्रह्माणमायातं समुद्रोऽपि कृताञ्जलिः ॥२२॥ प्रणम्य शिरसा बालं तस्योत्सङ्गेन्यवेशयत ॥ भो ब्रह्मन् सिन्धुगङ्गायां जातोऽयं

कर ब्रह्मा यह क्या है यों आश्चर्यान्वित होकर वहां आये ॥ २० ॥ वहां आकर ब्रह्माने देखा कि समुद्र के बीच में एक बालक दिखाई देता है तब ब्रह्मा बोले कि, यह अद्भुत बालक किसका है ॥२१॥ ब्रह्मा को आते हुए देखकर समुद्र ने भी हाथ जोड़े और ब्रह्मा का वचन सुनकर समुद्र बोला ॥२२॥ फिर समुद्र ने शिर झुकाय प्रणाम कर उसको

ब्रह्माकी गोदी में देदिया और कहा ब्रह्मन् यह बालक गंगासागर के संगम में उत्पन्न मेरा पुत्र है ॥२३॥ हे जगद्गुरो! इस बालक के जातकर्म्मादि संस्कार करिये नारदजी बोले। इस प्रकार जब समुद्र बोल ही रहा था तब ही वह सागर का पुत्र ब्रह्मा की डाढ़ी पकड़ वारम्बार हिलाने लगा डाढ़ी के हिलाने से ब्रह्मा के नेत्रों में जल आगया ॥ २४ ॥

मम पुत्रकः ॥ २३ ॥ जातकर्मादिसंस्कारान् कुरुष्वाद्य जगद्गुरो ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः ॥ २४ ॥ ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वन्तं मुहुर्मुहुः ॥ धुन्वतस्तस्य कूर्चं तु नेत्राभ्यामगमज्जलम् ॥ २५ ॥ कथंचिन्मुक्तकूर्चोऽथ ब्रह्मा प्रोवाच सागरम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैतज्जलं मम ॥२६॥ तस्माज्जलंधर इति ख्यातो नाम्ना भविष्यति॥ यत एव समुद्भूतस्तत्रैवान्तर्भविष्यति ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं ऽभिषेचयत् ॥ आमन्त्र्य सरितां नाथं ब्रह्मान्तर्धानमागमत् ॥ २८ ॥ अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः

॥ २९ ॥ किसी प्रकार ब्रह्मा अपनी डाढी छुड़ाकर समुद्र से बोले कि जिससे इसने मेरे नेत्रों से जल निकाला है ॥२६॥ इसलिये इसका नाम जलंधर पड़ेगा ॥ २७ ॥ इसी समय यह युवा और सब शास्त्रों के जानने वाला होजायगा और रुद्र को छोड़ कर इसको कोई नहीं मार सकेगा ॥ २८ ॥ ऐसा कहकर शुक्राचार्य को बुलाकर राज्याभिषेक करदिया

॥ २६ ॥ इस प्रकार समुद्र से कहकर ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर सागर उस लड़के को देखकर उसके नेत्र हर्ष से आनन्दित हुए और कालनेमि की पुत्री उसकी भार्या होने के लिये समुद्रने मांगी ॥३०॥ तब कालनेमि आदिक असुर हर्षित होकर उसको अपनी कन्या दे दी वह जलंधर भी उस अत्यन्त प्रेमवाली और आज्ञामें रहनेवाली

सागरस्तदा ॥ कालनेमिसुतां वृन्दां तद्भार्यार्थमयाचत ॥ २६ ॥ ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्त स्मै सुतां तां प्रददुःप्रहर्षिताः ॥ स चापि तां प्राप्यसुहृद्धशंवशां शशासगांशुक्रसहायवान्बली ॥३०॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यासंवादे जालंधरोपाख्याने तदुत्पत्तिकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ नारद उवाच ॥ ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः ॥ तेऽपि भूमण्डलं याता निर्भयास्तमुपाश्रिताः ॥ १ ॥ कदाचिच्छिन्नशिरसं राहुं दृष्ट्वा सदैत्यराट् ॥ पप्रच्छ

स्त्री को प्राप्त कर शुक्रकी सहायता से पृथ्वी का शासन करने लगा ॥इतिश्रीकार्तिक माहात्म्ये भा.टी. युते नवमोऽध्यायः ॥९॥ नारदजी बोले जिन दैत्यों को पहले देवताओंने जीत लिया था और इस समय पाताल में रहते थे वे सब जलंधर का आश्रय पाकर पृथ्वी पर निर्भय होकर रहने लगे ॥१॥ किसी समय राहु को कटा हुए सिर देख उस जलंधर ने शिरके

छेदन का कारण शुक्राचार्य से पूछा ॥ २ ॥ उन्होंने देवतों से समुद्र का मथन रत्नोंके अपहरण दैत्यों का निरादर की कथा सुनाय दी ॥ ३ ॥ अपने पिता का मथन सुनकर उसके क्रोध से नेत्र लाल होगए और घस्मर नामक अपने दूत को इन्द्र के पास भेजा ॥ ४ ॥ वह दूत स्वर्ग में जाकर देवसभा में गया और इन्द्र से बोला ॥ ५ ॥ घस्मर बोला

भार्गवं तत्र तच्छिरश्छेदकारणम् ॥२॥ स शशंस समुद्रस्य मथनं देवकारितम् ॥ रत्नापहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम् ॥ ३ ॥ स श्रुत्वा क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मन्थनं तदा ॥ दूतं संप्रेषयामास घस्मरं शक्रसन्निधौ ॥ ४ ॥ दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां प्राविशद्द्राम् ॥ जगाद सर्वमौलिस्तु देवेन्द्रं वाक्यमद्भुतम् ॥ ५ ॥ घस्मर उवाच ॥ जलंधरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह शृणुष्व तत् ॥ ६ ॥ कस्मात्त्वया मम पिता मथितः सागरोऽद्रिणा ॥ नीतानि सर्वरत्नानि तानि शीघ्रं प्रयच्छ मे ॥ ७ ॥ इति दूतवचः श्रुत्वा विस्मतस्त्रिदशाधिपः ॥ उवाच

समुद्र के पुत्र सब दैत्यों के स्वामी जलंधर का मैं दूत हूं और उन्होंने जो कहा है वह सुनो ॥ ६ ॥ तुमने मेरे पिता समुद्र को पर्वत से क्यों मथा और वहां से जो तुम सब रत्न ले आये हो वह सब हमको देदो ॥७॥ ऐसा दूत का वचन

सुनकर विस्मित हो इन्द्र भय और क्रोध संयुक्त होकर उस दूत से बोले ॥ ८ ॥ इन्द्रने कहा कि हे दूत सुनो जिस प्रकार मैंने समुद्र को मथा था मेरे भय से डरे हुए पर्वतों को समुद्रने अपने उदर में छिपाया और अन्य भी मेरे शत्रुओं की उसने रक्षा की इसलिये मैंने उसको मथकर सब रत्न अपहरण किये ॥ १० ॥ ११ ॥ इसी प्रकार सागरपुत्र

घस्मरं रौद्रं भयरोषसमन्वितः ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ शृणु दूत मया पूर्वं मथितः सागरो यथा ॥ अद्रयो मद्भयात्त्रस्ताः स्वकुक्षिस्थाः कृतास्तथा ॥ ९ ॥ अन्येऽपि मद्द्विषस्तेन रक्षिता दितिजाः पुरा ॥ तस्माद्यत्तत्प्रजातं तु मयाप्यपहृतं किल ॥ १० ॥ शंखोऽप्येवं पुरा देवान्द्विषत्सागरात्मजः ॥ ममानुजेन निहतः प्रविष्टः सागरोदरम् ॥ ११ ॥ तद्गच्छ कथयस्वास्य सर्वमथनकारणम् ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेन्द्रेणागमद्भुवम् ॥ १२ ॥ तदिदं वचनं सर्वं दैत्यायाकथयत्तदा ॥ तन्निशम्य तदा दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिताधरः ॥ १३ ॥ उद्योगमकरोत्तूर्णंसर्व-

शंखासुर ने भी देवताओं से शत्रुता की हमारे छोटे भाई ने सागर में प्रवेश करके उसको मारा ॥ ११ ॥ अब जाकर समुद्रके मथन का कारण अपने स्वामी से कहो ॥ नारदजी बोले ऐसे वह दूत शत्रु से बिदा होकर पृथ्वी पर आया ॥ १२ ॥ और इन्द्र का सब वचन जलंधर से कह दिया यह सुनकर उस दैत्य के क्रोध से होठ कांपने लगे ॥ १३ ॥

और सब देवताओंके जीतने की इच्छा से शीघ्रता पूर्वक उद्योग करने लगा तब जलंधर के उद्योग में दिशाओं से और पातालसे ॥ १४ ॥ करोड़ों दैत्य आने लगे । शुंभ निशुंभादिक दैत्यपति अपना २ करोड़ों दल लेकर आगये ॥१५॥ उस जलंधर ने स्वर्ग में जाकर नन्दन वन पर अपना अधिकार जमा लिया। तब देवता भी युद्ध के लिए अमरावती से

देवजिगीषया ॥ तदोद्योगे सुरेन्द्रस्य दिग्भ्यः पातालतस्तथा ॥ १४ ॥ दितिजाः प्रत्यपद्यन्त कोटिशः कोटिशस्तदा ॥ अथ शुम्भनिशुम्भाद्यैर्दलाधिपतिकोटिभिः ॥ १५ ॥ गत्वा त्रिविष्टपं दैत्यो नन्दनाधिष्ठितोऽभवत् ॥ निर्ययुस्त्वमरावत्या देवायुद्धाय दंशिताः ॥ १६ ॥ पुरीमावृत्य तिष्ठन्ति दृष्ट्वादैत्यबलं महत् ॥ ततः समभवद्युद्धंदेवदानवसेनयोः ॥ १७ ॥ मुसलैः परिघैर्बाणैर्गदाशक्तिपरश्वधैः ॥ ततोऽन्येसमधावन्तजघ्नतुश्चपरस्परम् ॥१८॥ क्षीणे चोभयसैन्ये तु रुधिरौघप्रवर्तिनी ॥ पतितैः पात्यमानैश्च गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ १६ ॥ विरराज रणे भूमिः संध्याभ्रपटलैरिव ॥ तत्र युद्धे

बाहर आये ॥ १६ ॥ देवताओं ने देखा कि बड़ी भारी दैत्यों की सेनाने नगर को घेर लिया है तब देवता और दैत्योंकी सेना में युद्ध होने लगा ॥ १७ ॥ मुसल, परिघ, बाण, गदा, शक्ति और परसुओं से आपुसमें मारने लगे ॥ १८ ॥ रुधिर की धारा बहाने वाली वे दोनों सेना ही निर्बल हो गईं । गिरे और गिरनेवाले रुधिर से लथपथ हाथी, घोड़े.

रथ और प्यादों से वह रणभूमि सन्ध्या के बादलों के समान सुशोभित होने लगी ॥१६॥२०॥ मृतसंजीविनी विद्या से अभिमंत्रित जल की बूंदों से युद्ध में मरे हुए दैत्यों को शुक्राचार्य जिलाने लगे। इधर बृहस्पति भी द्रोणाचल से दिव्यौषधि ला २ कर मरे हुए देवताओं को जिलाने लगे तब मरे हुए देवताओं को फिर जीये हुए देख क्रोधित हो

मृतान्दैत्यान् भार्गवस्तूदतिष्ठिपत् ॥ २० ॥ विद्यया मृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयबिन्दुभिः ॥ देवानपि हतान्युद्धे पुनरेव समुत्थितान् ॥ २१ ॥ जलंधरः क्रोधवशो भार्गवं वाक्यमब्रवीत् ॥ जलंधर उवाच ॥ मया युद्धे हता देवा उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः ॥ २२ ॥ तव संजीविनी विद्या नैवान्यत्रेति विश्रुतम् ॥ शुक्र उवाच ॥ दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरङ्गिराः सुरान् ॥ २३ ॥ जीवयत्येष तच्छीघ्रं द्रोणाद्रिं त्वमपाहर ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तः स तु दैत्येन्द्रो नीत्वा द्रोणाचलं तदा ॥ २४ ॥ प्राक्षिप॰

जलंधर शुक्राचार्य से बोले ॥ २२ ॥ मैंने जिन देवों को युद्ध में मारा है वे फिर कैसे उठ खड़े हुए ॥२३॥ यह आपकी मृतसंजीविनी विद्या आपके सिवाय दूसरा नहीं जानता यह हमने सुना है। शुक्राचार्य्य बोले बृहस्पति द्रोणाचलसे मृतसंजीविनी जड़ी लाकर देवताओं को जिलाता है अतः तुम द्रोणाचल को जाकर हरण करो ॥ २४ ॥ नारदजी

बोले यह सुनकर जलंधर द्रोणाचल को लाकर समुद्र में फेंक फिर महायुद्ध में आगया ॥ २५ ॥ तदनन्तर देवताओं को मरे देख द्रोणाचल पर बृहस्पति गये और वहां पर द्रोणाचल उन्होंने न देखा ॥ २६ ॥ जलंधर ने द्रोणाचल को अपहरण किया है ऐसा जानकर भय से विह्वल और हांफते २ बृहस्पति आकर बोले हे देवतों भागो २ यह दैत्य

त्सागरे तूर्णं पुनरागान्महाहवम् ॥ अथ देवान्हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद्गुरुः ॥ २५ ॥ तावत्तत्र गिरीन्द्रन्तु न ददर्श सुरार्चितः ॥ ज्ञात्वा दैत्यहृतं द्रोणं धिषणो भयविह्वलः ॥ २६ ॥ आगत्य दूराद्व्याजह्रे श्वासाकुलितविग्रहः ॥ पलायध्वंमहादेवा नायं जेतुं क्षमो यतः ॥ २७ ॥ रुद्रांशसंभवो ह्येष स्मरध्वं शक्रचेष्टितम् ॥ श्रुत्वा तद्वचनं देवा भयविह्वलितास्तदा ॥ २८ ॥ दैत्येन वध्यमानास्ते पलायन्त दिशो दश ॥ देवान्विद्रावितान्दृष्ट्वा दैत्यः सागरनन्दनः ॥ २९ ॥ शंखभेराजयरवैः प्रवि-

जीतने योग्य नहीं है क्योंकि यह महादेवजी के अंश से पैदा हुआ है तुम लोग इन्द्रकी करनी को स्मरण करो ॥ २७ ॥ २८ ॥ ऐसा सुनकर भय से विह्वल और जलंधर से खदेड़े हुए देवता सब दशों दिशाओं में भाग गये॥२९॥ समुद्र के पुत्र जलंधर ने देखा कि देवता सब भाग गये तब शंख भेरी और जय शब्द करता अमरावतीपुरी में

प्रवेश किया ॥ ३० ॥ जब जलंधर ने अमरावती में प्रवेश किया तब इन्द्र के साथ और दैत्यों से पीड़ित देवगण सुमेरु की गुफा में निवास करने लगे ॥३१॥३२॥ इति श्री का० भा० टी० युते दशमोऽध्यायः ॥१०॥ नारदजी बोले जलंधर को फिर आता हुआ देखकर इन्द्र के सहित देवता भयसे कांपते हुये विष्णु की स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले

वेशामरावतीम् ॥ प्रविष्टे नगरीं दैत्ये देवाः शक्रपुरोगमाः ॥३०॥ सुवर्णाद्रिगुहां प्राप्ता न्यवसन्दैत्य-तापिताः ॥ ३१ ॥ ततश्च सर्वेष्वसुरोधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेशयत्तदा ॥ शुम्भादिकान्दैत्य-वरान्पृथक् पृथक् स्वयंसुवर्णाद्रिगुहामगात्पुनः ॥ ३२ ॥ ॥ इति श्री प० कार्ति० श्रीकृष्ण० जलंधरोपाख्याने जलंधरविजयप्राप्तिर्नाम दशमोध्यायः ॥ १० ॥ ॥ नारद उवाच ॥ पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥ भयप्रकम्पिताः सर्वेविष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥१॥ देवाऊचुः ॥ नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायार्तिहन्त्रे ॥ विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे

आपने मच्छ कच्छपादि अनेक अवतार धारण कर भक्तों के अनेक कार्य किये हैं और उनके कष्टों का नाश किया है और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके स्वरूपों से जगत की उत्पत्ति पालन और संहार करते हैं गदा शंख पद्म और तल-

वार अपने हाथों में धारण किये हैं ऐसे आपको हमलोग नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥ आप लक्ष्मी के पति हैं, असुरों के विनाशक हैं गरुड़ की सवारी है पीताम्बरधारी हैं और यज्ञादि क्रियाओं को आप परिपूर्ण करते हैं ऐसे आपको वारंवार नमस्कार है ॥ ३ ॥ दैत्यों से पीड़ित, देवतों के दुःखरूपी पर्वतों के लिये आप वज्रस्वरूप हैं, विष्णु हैं,

गदाशंखपद्मारिहस्तायतेऽस्तु ॥ २ ॥ रमावल्लभायासुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय ॥ मखादिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताःस्मो नताःस्मः ॥ ३ ॥ नमो दैत्यसंतापितामर्त्य दुःखाचलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते ॥ भुजङ्गेशतल्पेशयायार्कचन्द्रद्विनेत्राय तस्मै नताःस्मो नताःस्मः ४ नारद उवाच ॥ संकष्टनाशनं नाम स्तोत्रमेतत्पठेन्नरः ॥ स कदाचिन्न संकष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥ ५ ॥ इति देवाः स्तुतिं यावत् कुर्वन्ति दनुजद्विषः ॥ तावत्सुराणामापत्तिर्विज्ञाता विष्णुना तदा ॥ ६ ॥ सहसोत्थाय दैत्यारिः सक्रोधः खिन्नमानसः ॥ आरूढो गरुडं वेगाल्लक्ष्मीं वचनमब्रवीत्

शेष की शय्या है आपके सूर्य और चंद्रमा ये दोनों नेत्र हैं ऐसे आपको वारंवार नमस्कार है ॥ ४ ॥ नारदजी बोले जो मनुष्य इस संकट नाशक स्तोत्र का पाठ करेगा वह विष्णु की कृपा से कभी संकटों से पीड़ित नहीं होगा ॥ ५ ॥ ऐसे जब देवता विष्णु की स्तुति कर रहे थे तब ही विष्णु ने देवताओं की बिपत्ति जानली ॥ ६ ॥ क्रोधित

और दुःखित विष्णु सहसा उठकर गरुड पर सवार होकर लक्ष्मी से बोले ॥७॥ तुम्हारे भाई जलंधरने देवतों को क्लेश दिया है। इसलिये देवताओं ने हमको युद्ध के लिये बुलाया है इसी से मैं वहां जाऊंगा ॥ ८ ॥ लक्ष्मी बोली हे नाथ ! मैं आप की प्यारी और भक्तहूं तब आप मेरे भाई को हे कृपानिधान कैसे युद्ध में मारियेगा ॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ जलंधरेण ते भ्रात्रा देवानां कदनं कृतम् ॥ तैराहूतो गमिष्यामि युद्धायाद्य त्वरान्वितः ॥ ८ ॥ श्रीरुवाच ॥ अहं ते वल्लभा नाथ भक्त्या च यदि सर्वदा ॥ तत्कथं ते मम भ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ रुद्रांशसंभवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि ॥ प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलंधरः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा गरुडारूढः शंखचक्रगदासिभृत् ॥ विष्णुर्वेगाद्ययौ युद्धं यत्र देवाःस्तुवन्ति ते ॥११॥ अथारुणानुजात्यु-

भगवान् बोले रुद्र के अंश से उत्पन्न होने के ब्रह्मा के बरदान के और तुम्हारी प्रीति के कारण वह मेरे वध के योग्य नहीं है ॥ १० ॥ नारदजी बोले ऐसा कह कर गरुड़ पर चढ़ शंख चक्र गदा और तलवार धारण कर शीघ्रता से जहां देवता स्तुति करते थे वहां भगवान् गये ॥ ११ ॥ तदनन्तर गरुड़ की बड़ी २ पांखों की वायु से पीड़ित

होकर दैत्य आकाश में उड़ने लगे जैसे वायु से आहत मेघ घूमते हैं ॥ १२ ॥ तब जलंधर वायु से पीडित दैत्योंको देखकर क्रोध से उछल विष्णु के समीप आकाश में आय गया ॥ १३ ॥ तब विष्णु और जलंधर का आकाश को बाणों से आच्छादित करने वाला बड़ाभारी युद्ध हुआ ॥ १४ ॥ विष्णु ने बाणों से जलंधर की ध्वजा, छत्र, धनुष

अपत्तवातप्रपीडिताः ॥ वात्या विमर्दिता दैत्या बभ्रमुःखे यथा घनाः ॥१२॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्या प्रपीडितान् ॥ उद्धृत्य नयनं क्रोधात् ततो विष्णुं समभ्ययात् ॥१३॥ ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत् ॥ आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत् ॥ १४ ॥ विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान् ॥ चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेनताडयन् ॥१५॥ ततोदैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः ॥ आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले ॥१६॥ विष्णुर्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव ॥ तावत्सहृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना ॥ १७ ॥ ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते

तथा घोड़ों को काट दिया और एक बाण जलंधर की छाती मे मारा ॥ १५ ॥ तब जलंधर गदा हाथ में लेकर शीघ्रता से उछल कर गरुड़ के मस्तक में मार पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ १६ ॥ तब विष्णु ने हंसते हुए अपनी तलवार से उसकी गदा काट दी उसी समय विष्णु की छाती में दृढ मुष्टि से जलंधर ने मारा ॥ १७ ॥ तब दोनों

महाबली पृथ्वी को शब्दित करते हुए बाहु, मुट्ठी और गोड़ों से मल्लयुद्ध करने लगे ॥ १८ ॥ विष्णु बोले कि हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारे इस विक्रम से मैं प्रसन्न हुआ तुम वर मांगो जो न देने योग्य भी हो सो भी मैं तुम्हारी इच्छानुकूल दूँगा ॥ २० ॥ जलंधर बोले हे भावुक ! श्यालक ! यदि आप मेरे पर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये मेरी बहिन और

महाबलौ ॥ बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव तुदन्तौ जानुभिर्महीम् ॥ १८ ॥ एवं तौ रुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः प्रतापवान् ॥ उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरनिस्वनः ॥ १९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोस्मि तव विक्रमात् ॥ अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ २० ॥ जलंधर उवाच ॥ यदि भावुकतुष्टोऽसि वरमेनं ददस्व मे ॥ मद्भगिन्या सहाद्यत्वं मद्गृहे सगणो वस ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा स भगवान् सर्वदेवगणैः सह ॥ तदा जलंधरपुरमगमद्रमया सह ॥ २२ ॥ जलंधरस्तु देवानामधिकारेषु दानवान् ॥ स्थापयित्वा महाबाहुः पुनरागान्महीतलम् ॥ २३ ॥

आप अपने गणों के साथ आज मेरे घर में रहिये ॥ २१ ॥ नारदजी बोले विष्णु भगवान् "बहुत अच्छा" कहकर सब देवगणों और लक्ष्मी के साथ जलंधर की नगरी में गये ॥ २२ ॥ जलंधर देवताओं के स्थान में दानवों को

रखकर फिर पृथ्वी पर चला आया ॥ २३ ॥ देव दानव और गन्धर्वों के पास जो उत्तम २ रत्न थे उनको अपने वश में कर जलंधर रहने लगा ॥ २४ ॥ देव, गन्धर्व, सिद्ध, सर्प, और राक्षसादिकों को अपनी रैयत बनाकर तीनों लोकों का राज्य करने लगा ॥ २५ ॥ ऐसे जलंधर देवताओं को वश में कर धर्म से अपने पुत्रों के समान पालन करने

देवगंधर्वसिद्धेषु यत्किंचिद्रत्नसंयुतम् ॥ तदात्मवशगं कृत्वाऽतिष्ठत्सागरनन्दनः ॥ २४ ॥ पाताल-भुवने दैत्यं निशुम्भं स महाबलम् ॥ स्थापयित्वा सशेषादीनानयद्भूतलं बली ॥ २५ ॥ देव-गन्धर्वसिद्धाद्यान् सर्पराक्षसमानुषान् ॥ स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुवनत्रयम् ॥ २६ ॥ एवं जलंधरः कृत्वा देवान् स्ववशवर्तिनः ॥ धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ २७ ॥ न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखी नैव कृशस्तथा ॥ न दीनो दृश्यते तस्मिन् धर्माद्राज्यं प्रशासति ॥२८॥ एवं महीं शासति दानवेन्द्रे धर्मेण सम्यक् च दिदृक्षयाहम् ॥ कदाचिदागामथ तस्य लक्ष्मींविलोकितुं

लगा ॥ २६ ॥ जब वह धर्म से राज्य करता था उस समय उसके राज्य में कोई रोगी, दुःखित, दुबला, दरिद्री नहीं दिखाई देता था ॥ २७ ॥ नारदजी कहने लगे कि ऐसे जब वह नियम पूर्वक धर्म से पृथ्वी का पालन करता था तब मैं किसी समय लक्ष्मी और विष्णु भगवान को देखने की इच्छा से वहाँ गया ॥ २८ ॥ इति श्रीकार्तिकमाहात्म्ये

भा० टी० युते एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ नारदजी बोले अति भक्ति भाव सहित उस त्रिलोकीनाथ दैत्येन्द्र ने हमारी विधि पूर्वक पूजा की हाथ जोड़ कर वह बोला ॥ १ ॥ हे मुने आपने यहां कुछ देखा और आप कहां से आये हैं और जिस कारण आप यहां आये हैं वह आज्ञा कीजिये ॥ २ ॥ नारदजी कहने लगे हे दैत्येन्द्र! मैं योंही घूमता

श्रीरमणं च सेवितुम् ॥ २६ ॥ इति श्रीपद्मपु० का०मा० श्रीकृष्णसत्यासंवादे नारदागमनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ स मां प्रोवाच विधिवत् संपूज्य च तु भक्तिमान् ॥ संप्रहस्यतदा वाक्यं स्नेहपूर्वं च वै नृप ॥ १ ॥ कुत आगम्यते ब्रह्मन् किं च दृष्टं त्वया प्रभो ॥ यदर्थमिह चायातस्तदाज्ञापयतां मुने ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ गतः कैलासशिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया ॥ तत्रोमया समासीनं दृष्टवानस्मि शंकरम् ॥ ३ ॥ योजनायुतविस्तीर्णे कल्पवृक्षमहावने ॥ कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणिसुदीपिते ॥ ४ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयो मेऽभवत्तदा ॥ कापीदृशी

हुआ कैलास पर्वत पर गया था वहां पार्वती के साथ शिवजी को बैठे हुए देखा ॥ ३ ॥ जहां दश हजार योजन में कल्पवृक्षों का वन सैकड़ों कामधेनु गौ हैं और जो चिन्तामणियों से देदीप्यमान हो रहा है ॥ ४ ॥ उसको देखकर बड़ा आश्चर्य

और तर्कना चित्त में होने लगी कि ऐसी ऋद्धि त्रिलोकी में है या यहीं ॥ ५ ॥ उसी समय हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारी ऋद्धि हमको स्मरण हो आई उसी के देखने के लिये मैं यहां आया हूं ॥ ६ ॥ तुम्हारी इस स्त्री रहित समृद्धि को देखने से मैं अनुमान कर्त्ता हूँ कि निश्चयही महादेवजी के सिवाय दूसरा त्रिलोकी में समृद्धिमान् नहीं है ॥ ७ ॥यद्यपि

भवेदृद्धिस्त्रैलोक्ये वा नवेति च ॥ ५ ॥ तदा तवापि दैत्येन्द्र समृद्धिः संस्मृता मया ॥ तद्विलोकन कामोऽस्मि त्वत्सान्निध्यमिहागतः ॥ ६ ॥ त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन् स्त्रीरत्नरहितां ध्रुवम् ॥ तर्कयामि शिवादन्यस्त्रिलोक्यां न समृद्धिमान् ॥ ७ ॥ अप्सरोनागकन्याद्या यद्यपि त्वद्वशे स्थिताः ॥ तथापि ता न पार्वत्या रूपेण सदृशा ध्रुवम् ॥ ८ ॥ यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः ॥ स्ववीर्यममुचत् पूर्वं तया कन्योपमीयते ॥ ९ ॥ वीतरागोऽपि हि यथा मदनारिः स्वलीलया ॥

तुम्हारे गृह में भी अप्सरा तथा नागकन्यादि हैं तौ भी पार्वती के ऐसे रूपवाली एक भी नहीं है ॥ ८ ॥ जिसके सलोने समुद्र में डूबकर ब्रह्मा का भी वीर्य स्खलित होगया अब उसके साथ दूसरी किसकी उपमा दी जाय ॥ ९ ॥ और जिस मछलीरूपिणी पार्वती ने रागरहित और कामदेव के शत्रु होने पर भी महादेवजी को अपने

सुन्दरता के गहन में फंसाय लिया ॥ १० ॥ स्त्रियों को रचते समय विधाता ने जिसका रूप वारंवार देख अप्सराओं की रचना की परन्तु उसके समान एक भी न हुई ॥ ११ ॥ इसी कारण स्त्रीरत्न संभोग करने वाले महादेवजी की वह श्रेष्ठ समृद्धि है। हे दैत्येन्द्र ! सर्व रत्नों के स्वामी होने पर भी तुम्हारे वैसी नहीं है ॥ १२ ॥ ऐसे कह और

सौन्दर्यगहनेऽभ्राम्यत् शफरीरूपया पुरा ॥१०॥ यस्याः पुनः पुनः पश्यन् रूपं धाता विसर्जने ॥
ससर्जाप्सरसस्तासां तत्समैकापि नाभवत् ॥११॥ अतः स्त्रीरत्नसंभोक्तुः समृद्धिस्तस्य सा वरा ॥
तथा न तव दैत्येन्द्र सर्वरत्नाधिपस्य च ॥१२॥ एवमुक्त्वा समामन्त्र्य गते सति स दैत्यराट् ॥
तद्रूपश्रवणादासीदनङ्गज्वरपीडितः ॥१३॥ अथ संप्रेषयामास स दूतं सिंहिकासुतम् ॥ त्र्यम्बका-
यापि च तदा विष्णुमायाविमोहितः ॥१४॥ कैलासमगमद्राहुः कुर्वन् शुक्लेन्दुवर्चसम् ॥ कार्ष्ण्ये-

उससे सलाह करके जब मैं वहां से चला आया तब उसके रूप की महिमा सुनकर वह कामज्वर से पीड़ित होता भया ॥१३॥ तदनन्तर विष्णु भगवान् की माया से विमोहित जलंधर राहु को दूत बनाकर महादेवजी के समीप भेजा ॥ १४ ॥ तब वह राहु अपने शरीर की कालिमा से शुक्लपक्ष के चंद्रमा के समान कैलास को कृष्ण पक्ष के

चंद्रमा के समान करता हुआ कैलास में आया और नन्दीश्वर की आज्ञा से महादेवजी के पास जाकर उनकी भौं का इशारा पाकर वह बोला ॥ १५-१६ ॥ हे वृषध्वज ! देवता और सर्पों से पूजित और सर्व लोक के स्वामी त्रिलोकी के पति जलंधर की आज्ञा को सुनो ॥ १७ ॥ श्मशानवासी हड्डियों के भारी बोझे को ढोनेवाले दिगंबर की स्त्री पार्वती

न कृष्णपक्षेन्दुवर्चसं स्वाङ्गजेन तम् ॥१५॥ निवेदितस्तदेशाय नन्दिना प्रविवेशसः ॥ त्र्यम्बकभ्रूलतासंज्ञाप्रेरितो वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥ राहुरुवाच ॥ देवपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेः प्रभोः ॥ सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां शृणु वृषध्वज ॥१७॥ श्मशानवासिनोनित्यमस्थिभारवहस्य च ॥ दिगंम्बरस्य ते भार्या कथं हैमवती शुभा ॥ १८ ॥ अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्री रत्नसंज्ञिका ॥ तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव ॥ १९ ॥ नारद उवाच ॥ वदत्येवं तदा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः ॥ अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः ॥ २० ॥ सिंहास्यः प्रललज्जिह्वः

कैसे हो सकती है ॥ १८ ॥ मैं रत्नों का मालिक हूं यह स्त्री स्त्रियों में रत्न है इसी से यह मेरी स्त्री होने के योग्य है तुम्हारे ऐसे भिखमंगे के योग्य नहीं है ॥ १९ ॥ नारदजी बोले राहु इस प्रकार कह ही रहा था कि एक भयंकर वज्र के समान गर्जता हुआ पुरुष पैदा हुआ ॥ २० ॥ जिसका सिंह के समान मुख, जिह्वाको लपलपाता, नयनों से

अग्नि निकल रही है और ऊपर को केश उठ रहे हैं अत्यन्त दुबला है मानों दूसरा नृसिंहावतार ही होय ॥ २१ ॥ अपने को खाने के लिये उस पुरुष को आता हुआ देखकर बड़े वेगसे भागा परन्तु उसने उसको बाहर आकर पकड़ लिया ॥ २२ ॥ वह राहु को पकड़कर भोजन करने लगा तब महादेवजी ने रोका कि यह परवश दूत है यह वध के

सज्वालनयनो महान् ॥ ऊर्ध्वकेशः शुष्क तनुर्नृसिंह इव चापरः ॥ २१ ॥ अधावत स वेगेन बहिः स च दधार तम् ॥ दृष्ट्वा खादितुमारब्धस्तावद्रुद्रेण वारितः ॥ २२ ॥ नैवासौ वध्यतामेति दूतोऽयंपरवान्यतः ॥ मुञ्चेति पुरुषः श्रुत्वा राहुं तत्याज सोऽम्बरे ॥ २३ ॥ राहुं त्यक्त्वाथ पुरुषस्तदा रुद्रं व्यजिज्ञपत् ॥ पुरुषउवाच ॥ क्षुधा मां बाधतेऽत्यन्तं क्षुत्क्षामश्चास्मि सर्वथा ॥ २४ ॥ किं भक्षयामि देवेश तदाज्ञापय मां प्रभो ॥ ईश्वर उवाच ॥ भक्षयस्वात्मनः शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषः स्वकम् ॥ हस्तपादोद्भवं

योग्य नहीं ॥ २३ ॥ इसको छोड दो ऐसा सुनकर उसने राहु को आकाश ही में छोड़ उसने महादेवजी से प्रार्थना की ॥ २४ ॥ पुरुष बोला हे देवेश ! हे प्रभो ! मैं भूख से क्षीण होगया हूं और हमको भूख लगी है मैं क्या खाऊं यह आप आज्ञा दीजिये ॥ २५ ॥ महादेवजी बोले कि तू अपने हाथ और पावों का मांस खा नारदजी बोले

शिवजी की ऐसी आज्ञा पाकर वह अपने हाथ और पांवों का मांस खागया तब उसका केवल शिर ही रह गया ॥ २६ ॥ उसका शिर ही बचा हुआ देखकर आश्चर्यान्वित और प्रसन्न होकर उस भयंकर कार्यकर्त्ता से बोले ॥ २७ ॥ तुम्हारा नाम कीर्त्ति होय और मेरे द्वार पर सदा रहो उसी दिन से महादेवजी के द्वार पर कीर्तिमुख

मांसं शिरःशेषो यथाऽभवत् ॥२६॥ दृष्ट्वा शिरोवशेषं तं सुप्रसन्नस्तदा शिवः ॥ उवाच भीमकर्माणं पुरुषं जातविस्मयः ॥२७॥ ईश्वर उवाच ॥ त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मद्द्वारगः सदा ॥ त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैव ते मत्प्रियंकराः ॥२८॥ नारद उवाच ॥ तदाप्रभृति देवस्य द्वारि कीर्तिमुखः स्थितः ॥ नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ॥ २९ ॥ राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपतद्बर्बरस्थले ॥ अतः स बर्बरो भूत इति भूमौ प्रथां गतः ॥ ३० ॥ ततः स राहुः पुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः ॥ समेत्य सर्वं कथयांबभूव जलंधरायैव विचेष्टितं तत्

रहने लगा ॥ २८ ॥ जो इसकी प्रथम पूजा न करे उसकी पूजा व्यर्थ होवेगी ॥ २९ ॥ राहु को इसने बर्बर स्थान में छोड़ा इसी से उसका नाम बर्बर प्रसिद्ध हुआ ॥ ३० ॥ फिर वह राहु अपना पुनर्जन्म मानता हुआ जलंधर के

पास आकर जलंधर से अपनी बीती सब कह दी ॥ २१ ॥ इति श्री पद्मपुराणांतर्गत-कार्तिकमाहात्म्ये-जलंधरोपाख्याने भाषा टीकायाम् द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारदजी बोले जलंधर ऐसा सुनकर अति क्रोधित हो करोड़ों दैत्यों से संयुक्त होकर उसी समय निकल पड़ा॥१॥ चलने के समय उसको अपने सन्मुख शुक्र और राहु दिखाई

॥ २१ ॥ इति श्रीप०का०मा० जलंधरोपाख्याने दूतवाक्यकथनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ जलंधरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः ॥ निर्जगामाशु दैत्यानां कोटिभिः परिवारितः ॥१॥ गच्छतोस्याग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत् ॥ मुकुटश्चापतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तथा ॥ २ ॥ दैत्यसैन्यावृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा ॥ व्यराजत नभः पूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः ॥ ३ ॥ तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ अलक्षितास्तदा जग्मुः शूलिनं तं व्यजिज्ञपुः ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ न जानासि कथं स्वामिन् देवापत्तिमिमां विभो ॥ तदस्मद्रक्षणार्थाय

पड़े मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़ा और शीघ्रता में आपभी फिसल पड़ा॥२॥ सैकड़ों दैत्योंकी सेनाओंसे परिपूर्ण सैकड़ोंविमानों से आकाश वर्षाकाल के बादलों के समान शोभित होने लगा ॥ ३ ॥ उसके इस उद्योगको देखकर इन्द्रादिक देवता छिपकर महादेवजीके पास जाकर बोले ॥४॥ हे स्वामिन् हमलोगों की विपत्ति को क्या आप नहीं जानते इसीसे आप

हमलोगोंकी रक्षा के लिये इस जलंधरको मारिये ॥ ५ ॥ ऐसा देवता बचन सुन हँसकर विष्णु भगवान्को बुलाकर बोले ॥६॥ हे विष्णो ! आपने युद्ध में जलंधरको क्यों नहीं मारा और वैकुंठको छोड़कर उसके घरमें आकर रहे विष्णु बोले तुम्हारा अंश और लक्ष्मी का भाई होने से मैंने इसको नहीं मारा अब आप ही इसको युद्ध में मारिये ॥८॥

जहि सागरनन्दनम् ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः । महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ जलंधरः कथं विष्णो न हतः संगरे त्वया ॥ तद्गृहं चापि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः ॥७॥ विष्णुरुवाच ॥ तवांशसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः ॥ न मया निहतः संख्ये त्वमेनं जहि दानवम् ॥८॥ ईश्वर उवाच ॥ नायमेभिर्महातेजा शस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया ॥ देवैः सह स्वतेजोंशं शस्त्रार्थं दीयतां मम ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अथ विष्णुमुखा देवाः स्वतेजांसि ददुस्तदा ॥ तान्येकमगमन्नीशो दृष्ट्वा स्वं चामुचन्महः ॥ १० ॥ तेना-

महादेवजी बोले यह महातेजस्वी जलंधर इन शस्त्रों से नहीं मारा जा सकता इससे आप अपने तेज के अंश के साथ देवतोंके तेजका अंश शस्त्र केलिये हमको दीजिये॥९॥ नारदजी बोले तब विष्णु आदि देवताओंने अपने २ तेज दिये तब वह सर्व तेज इकट्ठा होगया और महादेवजी ने अपना भी तेज उसीमें मिलाय दिया ॥१०॥ उस एकत्रित तेज से महा-

देवजी ने ज्वालामाला से दीप्यमान सुदर्शन चक्र नामक उत्तम शस्त्र बना लिया ॥ ११ ॥ और बचे बचाये तेज से इन्द्रने वज्र बना लिया तब तक करोड़ों हाथी, घोड़े रथ और प्यादों से संयुत होकर कैलास की आस पास की भूमि में जलंधर दीख पड़ा ॥ १२ ॥ उसको देख कर देवता सब छिपकर जैसे आये थे वैसे ही चले गये । और

करोन्महादेवो महसा शस्त्रमुत्तमम् ॥ चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालातिभीषणम् ॥ ११ ॥
ततः शेषेण च तदा वज्रं च कृतवान्हरिः ॥ तावज्जलंधरो दृष्टः कैलासतलभूमिषु ॥ १२ ॥
हस्त्यश्वरथपत्तीनां कोटिभिः परिवारितः ॥ तं दृष्ट्वालक्षिताजग्मुर्देवाः सर्वे समागताः ॥ १३ ॥
गणाश्च समनह्यन्त युद्धायातित्वरान्विताः ॥ नन्दी भवक्रसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया ॥ १४ ॥
अवतेरुर्गणा वेगात् कैलासाद्युद्धदुर्मदाः ॥ ततः समभवद्युद्धं कैलासोपत्यकाभुवि ॥१५॥ प्रमथाधि-

महादेवजी के गण उसी समय युद्धके लिये ॥ १३ ॥ तथा नंदी, गणेश और स्वामिकार्त्तिकआदिकगण शिवकी आज्ञा से कैलास पर्वत से अति शीघ्रता से नीचे उतर आये ॥ १४ ॥ तब कैलास के समीप की पृथ्वी पर महादेवजी के गण तथा दैत्यों का शस्त्र और अस्त्रों से परिपूर्ण युद्ध होने लगा ॥ १५ ॥ वीरों को हर्षित करनेवाले

भेरी मृदंग,शंखों के शब्दों से तथा हाथी घोड़े रथों के शब्दों से शब्दित होकर पृथ्वी कांपनेलगी ॥१६॥ और शक्ति तोमर,बाण, मुसल, प्रास और पट्टिशों से व्याप्त आकाश उल्काओं के समान सुशोभित होने लगा ॥१७॥ तब मरे हुए हाथी और घोड़ों से वह युद्धभूमि वज्र से तोड़े हुए पर्वतों के शिखरों के टुकड़ों के समान सुशोभित होने लगी

पदैत्यानां घोरशस्त्रास्त्रसंकुलम् ॥ भेरीमृदङ्गशंखौघनिःस्वनैर्वीरहर्षणैः ॥ १६ ॥ गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत ॥ शक्तितोमरबाणौघमुसलप्रासपट्टिशैः ॥ १७ ॥ व्यराजत नभः पूर्णमुल्काभिरिव संवृतम् ॥ निहतैरथनागाश्वैर्भूपतीभिर्व्यराजत ॥ १८ ॥ वज्राहताचलशिरः सकलैरिव संवृता ॥ प्रमथाहतदैत्यौघान् भार्गवः समजीवयत ॥ १६ ॥ युद्धे पुनः पुनस्तत्र मृतसंजीविनीबलात् ॥ तंदृष्ट्वा व्याकुलीभूता गणाः सर्वे भयान्विताः ॥ २० ॥शशंसुर्देवदेवाय तत्सर्वं शुक्रचे-

॥१८॥ महादेवजी के गणों से मारे हुए दैत्यों को शुक्राचार्य मृतसंजीविनी के बल से युद्ध में वारंवार जिलाने लगे ॥ १६ ॥ यह देखकर व्याकुल और भयान्वित होकर महादेवजी के गणोंने शुक्राचार्य का चरित्र महादेवजी से कहा ॥ २० ॥ तब महादेवजी के मुख से ताड़ के वृक्षों के समान, पर्वत की गुफा के समान मुखवाली और स्तनों

से वृत्तों को दबाने वाली एक अति भयंकर कृत्या उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥ वह युद्धभूमि में आकर बड़े २ दैत्यों को भक्षण करती हुई शुक्राचार्य को अपने भग में दबाकर आकाश में जाकर अन्तर्धान हो गई ॥ २२ ॥ तब युद्ध में उन्मत्त प्रसन्नता से विकसित मुखवाले शिवगण शुक्राचार्य को पकड़ा हुआ देख दैत्य सेना को मारने लगे ॥ २३ ॥

ष्ठितम् ॥ अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवातीव भीषणा ॥ २१ ॥ तालजंघा दरीवक्त्रा स्तना-पीडितभूरुहा ॥ सा युद्धभूमिमासाद्य भक्षयन्ती महासुरान् ॥ २२ ॥ भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगा-मान्तर्हिता नभः ॥ विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यगणास्तदा ॥ २३ ॥ अम्लानवदना हर्षान्निजघ्नु-र्युद्धदुर्मदाः ॥ अथाभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता ॥ २४ ॥ वायुवेगेनाहतेव प्रकीर्णा तृण-संततिः ॥ भग्नां गणभयात्सेनां दृष्ट्वामर्षयुता ययुः ॥ २५ ॥ निशुम्भशुम्भौ सेनान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान् ॥ त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः ॥ २६ ॥ मुञ्चन्तः शरवर्षाणि प्रावृषीव बला-

अब शिवगणों से पीड़ित दैत्यों की सेना इधर उधर भागने लगी जैसे वायु के वेगसे तृणसमूह बिखर जाते हैं ॥ २४ ॥ गणों के भय से भागती हुई सेना को देख सेनापति निशुंभ शुंभ और महाबली कालनेमी क्रोधित होकर वहां आये ॥ २५ ॥ महाबली ये तीनों वर्षाकाल में मेघों की समान शस्त्रों की वर्षा करते हुए शिवसेना को रोकने लगे

॥ २६ ॥ फिर गणों को कंपाते हुए दैत्यों के बाणों ने टिड्डी दल के समान आकाश और सब दिशाओं को रोक लिया ॥२७॥ फिर सैकड़ों बाणों से छिन्न भिन्न और रुधिर की धाराओं से व्याप्त शिवगण वसन्त में किंशुक पुष्प के समान शिवगणों के सिवाय वहाँ और कछु भी दिखाई नहीं पड़ता था ॥ २८ ॥ गिरे और गिराये हुए छिन्न

हस्ताः ॥ ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः ॥ २७ ॥ रुरुधुः खं दिशः सर्वा गणसेनाम-कम्पयन् ॥ गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः ॥ २८ ॥ वसन्ते किंशुकाभासा न प्राज्ञायत किंचन ॥ पतिताः पात्यमानाश्च भिन्नाश्छिन्नास्तदा गणाः ॥ २९ ॥ त्यक्त्वा संग्रामभूमिं ते सर्वेऽपि विमुखाभवन् ॥ ३० ॥ ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य शैलादिलम्बोदरकार्तिकेयाः ॥ त्वरा-न्विता दैत्यवरान् प्रसह्य निवारयामासुरमर्षिणस्ते ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे० कार्तिकमा०रुद्रसे-नापराभवोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥ ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नन्दीभमुख-

तथा भिन्न शिवगण युद्धभूमि को छोड़कर सब भाग गये ॥ २९ ॥ तब शैल, गणेश और स्वामिकार्तिक अपनी सेना को टूटी हुई देख क्रोधित हो दैत्यों को आकर रोकने लगे ॥ ३० ॥ इति श्री प० पु० कार्तिकमाहात्म्ये भा० टी० युते त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारदजी बोले वे तीनों दैत्य, सेनापति नंदी, गणेश और स्वामिकार्तिक को देख

क्रोधित हो द्वन्द्व युद्ध के लिये दौड़ पड़े ॥ १ ॥ कालनेमी नन्दीश्वर के पास शुंभ गणेशजी के पास निशुंभ कवच धारण कर स्वामिकार्तिक के पास युद्ध करने के लिये गये ॥२॥ निशुंभने कार्तिकेय के मयूर को पांच बाणों से हृदय में मारा और वह मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३ ॥ तब-जब तक कार्तिकेयने शक्ति उठाई तभी वेग से निशुंभने

षण्मुखान् ॥ अमर्षादभ्यधावन्त द्वन्द्वयुद्धाय दानवाः ॥ १ ॥ नन्दिनं कालनेमिश्च शुम्भो लम्बोदरं तथा ॥ निशुम्भः षण्मुखं वेगादभ्यधावत दंशितः ॥ २ ॥ निशुम्भः कार्तिकेयस्य मयूरं पञ्चभिः शरैः ॥ हृदि विव्याध वेगेन मूर्च्छितः स पपात ह ॥३॥ ततः शक्तिधरः शक्तिं यावज्जग्राह रोषितः ॥ तावन्निशुम्भो वेगेन स्वशक्त्या तमपातयत् ॥ ४ ॥ ततो नन्दी शरव्रातैः कालनेमिमवध्यत ॥ सप्तभिश्च हयान्केतुं धनुः सारथिमच्छिनत् ॥ ५ ॥ कालनेमिस्तु संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः ॥ तदपास्य स शूलेन तं वक्षस्यहनद्बली ॥ ६ ॥ स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो

अपनी शक्ति से उस शक्ति को गिराय दी ॥ ४ ॥ फिर नंदीश्वर बाणों से कालनेमी को मारकर सात बाणों से घोड़ों को धनुष और सारथिको काटकर गिराय दिया ॥ ५ ॥ कालनेमी ने भी नंदी के धनुष को काट उस बली ने शूल से नंदी की छाती में मारा ॥ ५ ॥ शूल से फटी छाती वाला तथा घोड़े, और सारथि मरगये ऐसे कालनेमी

ने भी पर्वत का शिखर उखाड़ उस से नन्दीश्वर को गिराय दिया ॥ ७ ॥ अब रथ तथा मूषकवाहन शुंभ और गणेशजी ये दोनों युद्ध करते हुए बाणोंसे आपुस में मारने लगे ॥ ८ ॥ गणेशजी ने शुंभ को बाण से मार कर तीन बाण से सारथी को पृथ्वी पर गिराय दिया ॥ ९ ॥ तब अति क्रोधित हो शुंभ भी बाणों की वर्षा से गणेशजी को

हतसारथिः ॥ अद्रेः शिखरमामुच्य शैलादिं सोऽप्यपातयत् ॥ ७ ॥ अथ शुम्भो गणेशश्च रथ-मूषकवाहनौ ॥ युद्ध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम् ॥ ८ ॥ गणेशस्तु तदा शुम्भं हृदि विव्याध पत्रिणा ॥ सारथिं च त्रिभिर्विंध्वा पातयामास भूतले ॥ ९ ॥ ततोऽतिक्रुद्धः शुम्भोऽपि बाणषट्यागणाधिपम् ॥ मूषकं पत्त्रिभिर्विंध्वा ननाद जलदस्वनः॥१०॥ मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चचाल दृढवेदनः ॥ लम्बोदरश्च पतितः पदातिरभवन्नृप ॥ ११ ॥ ततो लम्बोदरः शुम्भं हत्वा परशुना हृदि॥ अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुहत्पुनः ॥१२॥ कालनेमिर्निशुम्भश्चाप्युभौ लम्बोदरं शरैः ॥

और तीन बाणोंसे मूषकको मार मेघके समान गर्जने लगा ॥१०॥ मूषक बाणोंसे अति पीड़ित होकर चल नहीं सका तब गणेशजी मूषक से उतर कर पैदल हो गये ॥ ११ ॥ फिर गणेशजी शुम्भ को फरसे से हृदय में मारकर उसको पृथ्वी पर गिराय आप फिर मूषकपर सवार हो गये ॥ १२ ॥ फिर कालनेमी और निशुम्भ ये दोनों एकही बार

गणेशजी को कोड़े से दिग्गज के समान बाणों से मारते हुए ॥ १३ ॥ गणेशजी को पीड़ित देख करोड़ों भूतगणों को साथ ले महाबली वीरभद्र वहां दौड़कर आये ॥ १४ ॥ कूष्मांड, भैरव, वैताल, योगिनीगण, पिशाच ये सब वीर-भद्र के पीछे २ आये ॥ १५ ॥ तब किलकिहर, सिंह कीसी गर्जना और घर्घर शब्दों से पृथ्वी पूर्ण होकर कांपने

युगपज्जघ्नतुः क्रोधात् तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १३ ॥ तं पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः ॥
अभ्यधावत वेगेन भूतकोटियुतस्तदा ॥ १४ ॥ कूष्माण्डभैरवाश्चापि वेताला योगिनीगणाः ॥
पिशाचयोगिनीसंघा गणाश्चापि तदन्वयुः ॥ १५ ॥ ततः किलकिलाशब्दैः सिंहनादैः सघर्घरैः ॥
भेरीतालमरूकैश्च पथिवी समकम्पत ॥ १६ ॥ ततो भूतान्यधावन्त भक्षयन्ति स्म दानवान् ॥
उत्पतन्त्यापतन्ति स्म ननृतुश्च रणांगणे ॥ १७ ॥ नन्दी चकार्तिकेयश्च समाश्वस्तौ त्वरान्वितौ ॥
निजघ्नतूरणे दैत्यान् निरन्तरशरव्रजैः ॥ १८ ॥ छिन्नभिन्नाहतैर्दैत्यैः पतितैर्भक्षितैस्तदा ॥ व्याकुला

लगी ॥ १६ ॥ तब भूतगण मानवों का भक्षण करते हुए इधर उधर दौड़ने और उछल कूद मचाने लगे ॥ १७ ॥ नंदी और स्वामिकार्तिक सावधान होकर शीघ्रता से बाणों को छोड़ते हुए रण में दैत्यों को मारने लगे ॥ १८ ॥ छिन्न

भिन्न, मारे हुए गिरे और भक्षण किये हुए दैत्यों से वह सेना व्याकुल और उदास हो गई ॥ १६ ॥ तब विध्वंस होती हुई सेना को देखकर बड़ी ध्वजावाले रथ पर चढ़ कर जलन्धर गणों के संमुख आया ॥ २० ॥ तब तो हाथी, घोड़े, शंख, भेरी, और सिंहनाद दोनों सेनाओं में होने लगा ॥ २१ ॥ जलंधर के बाणसमूह से आकाश और पृथ्वी

सा भवत्सेना विषण्णवदना तदा ॥ १६ ॥ प्रविध्वस्तां तदा सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः ॥ रथेनातिपताकेन गणानभिययौ बली ॥ २० ॥ हस्त्यश्वरथसंह्रादाः शंखभेरीस्वनास्तथा ॥ अभवत्सिंहनादश्च सेनयोरुभयोस्तदा ॥ २१ ॥ जलन्धरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव ॥ द्यावापृथिव्योरच्छन्नमन्तरं समपद्यत ॥ २२ ॥ गणेशं पञ्चभिर्विध्वा शैलादिं नवभिः शरैः ॥ वीरभद्रं च विंशत्या ननाद जलनिःस्वनः ॥ २३ ॥ कार्तिकेयस्तदा दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरः ॥ निघूर्णिशक्तिनिर्भिन्नः किंचिद् व्याकुलमानसः ॥ २४ ॥ ततः क्रोधपरीताक्षः कार्तिकेयं जलन्धरः ॥ गदया ताडयामास

कुहेसे के समान ढक गई ॥ २२ ॥ फिर गणेशजी को पांच, नन्दीश्वर को नौ, वीरभद्र को बीस बाण मारकर मेघ के समान गरजने लगा ॥ २३ ॥ तब कार्तिकेय ने जलंधर को शीघ्रता से शक्ति मारी उससे कुछ व्याकुल होकर घूम

गया ॥२४॥ वह अति क्रोधित हो जलंधर ने स्वामिकार्त्तिकको गदा से मार कर पृथ्वी पर गिराय दिया ॥२५॥ उसी प्रकार नंदी को भी उसने पृथ्वी पर गिराय दिया तब गणेशजी ने क्रोधित हो गदा को फरसे से काट दिया ॥२६॥ फिर वीरभद्र ने तीन बाणों से जलंधर को मार कर सात बाणों से घोड़े, ध्वजा, धनुष और छत्र को काट दिया

स च भूमितलेऽपतत् ॥ २५ ॥ तथैव नन्दिनं वेगादपातयत भूतले ॥ ततो गणेश्वरः क्रुद्धो गदां परशुनाऽहनत् ॥ २६ ॥ वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम् ॥ सप्तभिश्च हयान्केतुं धनुश्छत्रं च चिच्छिदे॥२७॥ ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्य दारुणाम् ॥ गणेशं पातयामास रथं चान्यमथाऽरुहत् ॥ २८ ॥ अभ्ययादथ वेगेन वीरभद्रो रुषान्वितः ॥ ततस्तौ सूर्यसंकाशौ युयुधाते परस्परम् ॥ २९ ॥ वीरभद्रः पुनस्तस्य हयान्बाणैरपातयत् ॥ धनुश्चिच्छेद दैत्येन्द्रः पुप्लुवे परिघायुधः

तब जलंधरने अतिभयंकर शक्ति उठाय गणेशजी को गिराकर दूसरे रथ पर चढ़ गया ॥ २८ ॥ तब फिर वीरभद्र ने बाणों से उसके घोड़ों को मारकर गिराय दिये तब जलंधरने वीरभद्र का धनुष काट परिघ हाथ में लेकर उछलने लगा ॥२९॥ नारदजी बोले वह जलंधर वीरभद्र के पास शीघ्रता से जाकर उसके मस्तक पर परिघ से मारा वह फटे

मस्तकवाला मुख से रुधिर को उगिलता हुआ वीर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३०॥ इति श्री पद्मपुराणे जलंधरोपाख्याने कार्त्तिकमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ गिरे हुए वीरभद्र को देख महादेवजी के गण भय से रण को छोड़कर महादेवजीको पुकारते हुए भागने लगे ॥ १ ॥ तब महादेवजी अपने गणों का कोलाहल सुन बैल पर चढ़ हँसते हुए

॥ ३० ॥ स वीरभद्रं त्वरयाभिगम्य जघान दैत्यः परिघेण मूर्ध्नि ॥ स चापि वीरः प्रविभिन्नमूर्द्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन् ॥ ३१ ॥ इति श्रीप० का०श्रीकृ० वीरभद्रवधो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ पतितं वीरभद्रं तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात् ॥ अगमंस्ते रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम् ॥ १ ॥ अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः ॥ अभ्ययाद्वृषभारूढः संग्रामं प्रहसन्निव ॥ २॥ रुद्रमायान्तमालोक्य सिंहनादैर्गणाःपुनः ॥ निवृत्ताः संगरे दैत्यान्निजघ्नुः शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥ दैत्याश्च भीषणं दृष्ट्वा सर्वे चैव विदुद्रुवुः ॥ कार्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा पातकानीव

युद्धभूमि में आये ॥ २ ॥ महादेवजी को आते हुए देखकर सिंह से गर्जते हुए लौट पड़े और बाणों की वर्षा से दैत्यों को मारने लगे ॥ ३ ॥ जैसे कार्तिक व्रत करनेवाले को देखकर पाप भागते हैं वैसेही भयंकर शिवजी को देख सब

दैत्य भाग गये ॥ ४ ॥ तब युद्ध से भागे हुये दैत्यों को देखकर हजारों बाणों को छोड़ता हुआ जलंधर महादेवजी पर टूट पड़ा ॥ ५ ॥ और शुंभ, निशुंभ, श्वमुख, कालनेमि, खड्गरोमा और घस्मर इत्यादि दैत्य भी शिवजी के समीप दौड़ आये ॥६॥ बाणों के अंधकार में अपने गणों को आच्छन्न देखकर शिवजी ने उस बाणजाल को काटकर अपने

तद्भयात् ॥ ४ ॥ अथ जलंधरो दैत्यान्विवृतान्प्रेक्ष्य संगरे ॥ रोषादधावच्चण्डीशं मुञ्चन् बाणान्सहस्रशः ॥ ५ ॥ शुम्भोनिशुम्भोऽश्वमुखो कालनेमिर्बलाहकः ॥ खड्ग रोमाप्रचण्डश्च घस्मराद्या शिवंययुः॥६॥ बाणान्धकारसंच्छन्नं दृष्ट्वा गणबलं शिवः ॥ बाणजालमवाच्छिद्य स्वबाणैरावृतं नभः ॥७॥ दैत्यांश्च बाणवात्याभिः पीडितानकरोत्तदा ॥ प्रचण्डबाणजालौघैरपातयत भूतले ॥ ८ ॥ खड्गरोम्णः शिरः कायात् तदा परशुनाऽच्छिनत् ॥ बलाहकस्य च शिरः खट्वांगेनाकरोद्द्विधा ॥ ९ ॥ बध्वा च घस्मरं

बाणों के समूह से आकाश को छिपाय दिया ॥ ७ ॥ बाणों के समूह से दैत्यों को पीड़ित करके महादेवजी पृथ्वी पर गिराने लगे ॥८॥ और खड्गरोमा का शिर परशु से काट दिया और खट्वांगसे बलाहक के शिर के महादेवजीने दो टुकड़े कर दिये ॥ ९ ॥ और घस्मर दैत्य को पाश से बांध कर पृथ्वीपर पटक दिया तथा कोई वृषभ के सींगों से कोई

दैत्य बाणों से शिवजी ने गिराय दिये और वे सिंहसे पीडित हाथी के समान दैत्य रणमें ठहर न सके ॥ १० ॥ फिर अति क्रोधित होकर वज्र के समान गर्जता हुआ जलंधर रण में महादेवजी को पुकारने लगा ॥ ११ ॥ हे जटाधर! इन सभोंसे क्या युद्ध कर रहे हो ? मेरे साथ युद्ध करके अपने बल को दिखावो ॥ १२ ॥ नारदजी बोले तब दश बाणों से

दैत्यं पाशेनाभ्यहनद्भुवि ॥ वृषवेगहताः केचित् केचिद्बाणैर्निपातिताः ॥ १० ॥ न शेकुरसुराः स्थातुं गजाः सिंहार्दिताइव ॥ ततः क्रोधपरीतात्मा वेगाद्रुद्रं जलंधरः ॥ आह्वयामास समरे तीव्राशनि-समस्वनः ॥ ११ ॥ जलंधर उवाच ॥ युध्यस्व च मया सार्द्धं किमेभिर्निहतैस्तव ॥ यच्च किंचि-द्बलंतेऽस्ति तद्दर्शय जटाधर ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा दशभिर्बाणैर्जघान वृषभध्वजम् ॥ तान्प्राप्तान्नि-शितैर्बाणैश्चिच्छेद प्रहसन् शिवः ॥ १३ ॥ ततो हयान्ध्वजं छत्रं धनुश्चिच्छेद सप्तभिः ॥ स छिन्नधन्वा विरथो गदामुद्यम्य वेगवान् ॥ १४ ॥ अभ्यधावच्छिवस्तावद्गदा बाणैस्त्रिधाऽच्छिनत् ॥

महादेवजी को जलंधर ने मारा और उनको महादेवजी ने अपने तीखे बाणों से हंसते हुए बीच ही में काट दिये ॥ १३ ॥ फिर सात बाणों से उसके शिवजी ने घोड़े, ध्वजा, छत्र और धनुष भी काट दिये ॥ १४ ॥ जब उसके धनुष और रथ

कट गये तब वह गदाको हाथमें लेकर दौड़ा तभी महादेवजीने बाणोंसे गदाके दो टुकड़े करदिये ॥ १५ ॥ तौ भी वह मुट्ठी को बांधकर महादेवजी के मारने की इच्छा से आया तब तक महादेवजी ने उसको बाणों से एक कोस की दूरी पर फेंकदिया ॥ १६ ॥ तब महादेवजीको अपनेसे अधिक बलवान् जानकर महादेवजी को मोहनेवाली गान्धर्वीनाम माया

तथापि मुष्टिमुद्यम्य ययौ रुद्रं जिघांसया ॥ १५ ॥ तावच्छिवेन बाणौघैः क्रोशमात्रमपाकृतः ॥
ततो जलन्धरो दैत्यो मत्वा रुद्रं बलाधिकम् ॥ १६ ॥ ससर्ज मायां गान्धर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम् ॥
ततो जग्मुश्च ननृतुर्गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ १७ ॥ तालवेणुमृदङ्गाद्यान् वादयन्ति स्म चापरे ॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुद्रो नादविमोहितः ॥ १८ ॥ पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः ॥
एकाग्रीभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलन्धरः ॥ १९ ॥ कामार्तः स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत् ॥

जलंधर ने रची ॥ १७ ॥ तब तो वहां पर गन्धर्व और अप्सराओं के गण गाने और नाचने लगे दूसरे लोग ताल, मुरली मृदंग आदिक के बाजे बजाने लगे ॥ १८ ॥ इस बड़े भारी आश्चर्य को देख नाद से मोहित होगये और हाथों से शस्त्र गिरपड़े इसको भी नहीं जाना ॥ १९ ॥ एकाग्रचित्त महादेवजी को देखकर जलंधर कामपीड़ित

होकर पार्वती के पास गया ॥ २० ॥ युद्ध की रक्षा के लिये महाबली शुंभ और निशुंभ को रखकर दश भुजा, पांच मुख, तीन नेत्र, और जटा को धारण कर बैल पर सवार होकर जलंधर वहाँ गया तब पार्वती महादेवजी को आते देख सखियों के बीच से उठकर महादेवजी के संमुख आई ॥ २१ ॥ २२ ॥ पार्वती को देखने ही से

युद्धे शुम्भनिशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ ॥ २० ॥ दशदोर्दण्डपंचास्यत्रिनेत्रश्च जटाधरः ॥ महावृषभमारूढः स बभूव जलन्धरः ॥ २१ ॥ अथो रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा ॥ अभ्याययौ सखीमध्यात् तद्दर्शनपथेऽभवत् ॥ २२ ॥ यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः ॥ तावत्सवीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाभवत्तदा ॥ २३ ॥ अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला ॥ जगामान्तर्हिता वेगात् सा तदोत्तरमानसी ॥ २४ ॥ तामदृष्ट्वा ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव ॥ जवेनागात्पुनर्युद्धे यत्र देवो वृषध्वजः ॥ २५ ॥ पार्वत्यपि भयाद्विष्णुं सस्मार मनसा तदा ॥

उसका वीर्य स्खलित होगया और उस दैत्य के अंग जड़के समान हो गये ॥ २३ ॥ तब उसको जलंधर जान कर भयसे विह्वल पार्वती अंतर्धान होकर उत्तर मानस में चली गई ॥ २४ ॥ पार्वती को वहां बिजली के समान गायब हुई देखकर वह दैत्यपति शीघ्रता से जहां महादेव जी थे वहां रण में आया ॥ २५ ॥ इधर पार्वती ने भी

भय से विष्णु का स्मरण किया और स्मरण करने के साथ ही अपने पास बैठे हुए विष्णु के दर्शन किये ॥ २६ ॥ पार्वती बोली हे विष्णो ! दुष्ट जलंधर ने जो अद्भुत कार्य किया है उसको क्या नहीं जानते ॥ २७ ॥ भगवान् बोले उसीने जो यह मार्ग दिखाया है उसी मार्ग से हमलोग भी क्यों नहीं चलैं इसके सिवाय पातिव्रत्य से

तावद्ददर्श तं देवं सूपविष्टं समीपगम् ॥ २६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ विष्णो जलन्धरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम् ॥ तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥ २७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तेनैव दर्शितः पन्था वयमप्यन्वयामहे ॥ नान्यथा स भवेद्वध्यः पातिव्रत्यसुरक्षितः ॥२८॥ जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालन्धरं पुरम् ॥ अथ रुद्रश्च गन्धर्वानुगतः संगरे स्थितः ॥ २९ ॥ अन्तर्धानगतां मायां दृष्ट्वा स बुबुधे तदा ॥ ३० ॥ ततो भवो विस्मितमानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा ॥ स

सुरक्षित वह कदापि नहीं मारा जा सकता ॥ २८ ॥ नारदजी बोले ऐसे कहकर विष्णु जलंधर की पुरी में आए और इधर महादेवजी गंधर्वों के साथ रण में खड़े थे फिर माया नष्ट होजाने से महादेवजी सावधान हुए ॥ २९ ॥ फिर महादेवजी अपने चित्त में आश्चर्य मानते हुए क्रोधित हो जलंधर के साथ युद्ध करने के लिये आए ॥३०॥ वह

दैत्य भी महादेवजी को पुनर्बार आये देख रण में बाणों की वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे का. मा. भा. टी. युते शिवजलंधरसंवादो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नारदजी बोले विष्णु ने जलंधर के पुरमें जाकर वृन्दा के पातिव्रत्य को नाश करने की इच्छा करी ॥ १ ॥ तदनन्तर वृन्दादेवी ने भैंसे पर चढ़े, तेल

अपि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैः समवाकिरद्रणे ॥२१ ॥ इति श्रीप० का० मा० श्रीकृष्णस० जालंधरोपाख्याने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ विष्णुर्जलन्धरं दृष्ट्वा तद्दैत्यपुटभेदनम् ॥ पातिव्रत्यस्य भङ्गाय वृन्दायाश्चाकरोन्मतिम् ॥ १ ॥ अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह ॥ भर्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगम्बरम् ॥२॥ कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम् ॥ दक्षिणाशागमं मुण्डं तमसाप्यावृतं तदा ॥ ३ ॥ स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना सह ॥ ततः प्रबुद्धा सा बाला तत्स्वप्नं प्रविचिन्वती ॥ ४ ॥ ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभंमुहुः ॥

लगाये हुए, नंगे, काले फूलोंकी माला धारण किये राक्षस गणों से संयुक्त, दक्षिण दिशा में जाते हुए अंधकार से आच्छादित अपने पतिको स्वप्न में देखा ॥ २ ॥ ३ ॥ और अपने साथ अपनी पुरीको समुद्र में डूबी हुई देखा उसके जागने पर वह उस दुःस्वप्न का विचार करने लगी ॥ ४ ॥ और तेज रहित और छिद्रोंके सहित उगते

सूर्यको देखा इसको अपना अनिष्ट जानकर रोती हुई भयसे विह्वल होगई ॥ ५ ॥ गोपुर तथा अटारी में जब कहीं सुख नहीं मिला तब दो सखियों के साथ पुष्पवाटिका में गई ॥ ६ ॥ डरी हुई उस बाला को जब वहां भी सुख नहीं मिला तब वन वन में घूमने से भी कहीं उसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिली ॥ ७ ॥ फिर वनों में

तदनिष्टमिति ज्ञात्वा रुदती भयविह्वला ॥ ५ ॥ कुत्रचिन्नालभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु ॥ ततः सखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत् ॥६॥ संत्रस्ता साऽभ्रमद्वाला नालभत्कुत्रचित्सुखम् ॥ वनाद्वना-न्तरं याता नैव वेदात्मनस्तदा ॥ ७ ॥ ततः सा भ्रमती बाला ददर्शातीव भीषणौ ॥ राक्षसौ सिंह-वदनौ दंष्ट्राननविभीषणौ ॥ ८ ॥ तौ दृष्ट्वा विह्वलातीव पलायनपराऽभवत् ॥ ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम् ॥६॥ ततस्तत्कण्ठमाव्रज्य निजां बाहुलतां भयात् ॥ मुने मां रक्ष शरणमा-

घूमती हुई उसने सिंहके समान मुख और भयंकर दाढ़ तथा नयनवाले दो राक्षसों को देखा ॥ ८ ॥ उनको देखकर अति व्याकुल हो भागने लगी तब शिष्य के साथ तथा मौनी एक तपस्वी को देखा ॥ ६ ॥ तब भय से अपनी भुजालता को उसके कंठ में लपेटकर बोली कि हे महाराज मैं आपकी शरण में हूं मेरी इन राक्षसों से रक्षा

करिये ॥ १० ॥ मुनिने राक्षसों से डरी हुई देखकर हुंकारही से उनको पीछे भगा दिया ॥ ११ ॥ उन राक्षसों को हुंकार भय से डरे हुए और भागे हुए देख कर भूमि में दण्डवत् प्रणाम कर वृन्दा बोली ॥ १२ ॥ हे कृपानिधे इस घोर भयसे मेरी आपने रक्षा की है इसी कारण आपसे कुछ प्रार्थना करती हूं सो आप कृपा कर सुनिये ॥ १३ ॥ हे

गतास्मीत्यभाषत ॥ १० ॥ मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसानुगतां तदा ॥ हुङ्कारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ रुषा ॥ ११ ॥ तौ हुङ्कारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा च विमुखौ गतौ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वृन्दा वचनमब्रवीत ॥ १२ ॥ वृन्दोवाच ॥ रक्षिताहं त्वया घोरात् भयादस्मात्कृपानिधे ॥ किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपया तन्निशामय ॥ १३ ॥ जलन्धरो हि मद्भर्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो ॥ स तत्रास्ते गतो युद्धे तन्मे कथय सुव्रत ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवेक्षत ॥ तावत्कपी समायातौ प्रणम्य चाग्रतः स्थितौ ॥ १५ ॥ ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ ॥

सुव्रत ! मेरे पति जलंधर महादेवजी से युद्ध करने के लिये गये हैं सो वे युद्ध में कैसे हैं सो आप कहिये ॥ १४ ॥ नारदजी बोले मुनिने उसका वचन सुनकर कृपा पूर्वक ऊपर को देखा उसी समय दो बन्दर वहां आए और प्रणाम कर मुनि के सम्मुख खड़े होगये ॥१५॥ फिर वे दोनों बन्दर मुनिकी भौहों का इशारा पाकर आकाश में जाकर

क्षण ही मात्र में पुनः आकर मुनि के सामने खड़े हो गये ॥ १६ ॥ उन दोनों बन्दरों के हाथ में जलंधर का शिर और धड़ देखकर वह पति के कष्ट से दुःखित होकर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ १७ ॥ फिर मुनि ने उसको कमंडलु का जल छिड़क सावधान किया तब वह वृन्दा अपने पति के मस्तक से मस्तक मिलाकर रोने लगी ॥ १८ ॥

गत्वा क्षणार्धादागत्य प्रणतावग्रतः स्थितौ ॥ १६ ॥ शिरः कबन्धहस्तौ च दृष्ट्वाब्धितनयस्य सा ॥ पपात मूर्छिता भूमौ भर्तुर्व्यसनदुःखिता ॥ १७ ॥ कमण्डलूदकैः सिक्ता मुनिनाऽश्वासिता तदा ॥ स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह ॥ १८ ॥ वृन्दोवाच ॥ यः पुरा सुखसंवादे विनोदयसि मां प्रभो ॥ स कथं न वदस्यद्य त्रैलोक्यविजयी हतः ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ रुदित्वेतितदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ वृन्दोवाच ॥ कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवयैनं मम प्रियम् ॥ २० ॥ त्वमेवास्य मुने शक्तो जीवनाय मतो मम ॥ नारद उवाच ॥ इति

वृन्दा बोली जो आप एकान्त के मधुरालाप में हे प्रभो ! आनन्द देते थे वही आप निरपराधिनी अपनी प्यारी से क्यों नहीं बोलते ॥ १९ ॥ जिन आपने विष्णु के साथ देवता और गंधर्वों को जीत लिया था उन्हीं तीनों लोकों के विजय करने वाले आपको तपस्वी महादेवजी ने कैसे मारा ॥ २० ॥ नारदजी बोले-ऐसे वह वृन्दा

विलाप करके मुनिसे बोली हे कृपानिधे हे मुनिवर ! इस मेरे पति को आप जिवाइये हे मुने मैं यह जानती हूं कि आप ही इसके जिवाने में समर्थ हैं ॥ २१ ॥ नारदजी बोले ऐसा उसका वचन सुनकर मुनि हंसते हुए बोले कि यह तेरा पति महादेवजी से मारा गया है इससे यह जी नहीं सकता तौ भी तुम्हारे पर कृपा कर इस

तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥ २१ ॥ मुनिरुवाच ॥ नायं जीवयितुं शक्यो रुद्रेण निहतो युधि ॥ तथापि त्वत्कृपाविष्ट एनं संजीवयाम्यहम् ॥ २२ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे विप्रस्तावत्सागरनन्दनः ॥ वृन्दामालिंग्य तद्वक्त्रं चुचुम्बे प्रीतमानसः ॥ २३ ॥ अथ वृन्दापि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा ॥ रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम् ॥ २४ ॥ कदाचित्सुरतस्यान्ते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव च ॥ निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता तदा वचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥ वृन्दोवाच ॥

को मैं जिवाता हूँ ॥ २२ ॥ ऐसा कह कर मुनि के अंतर्धान होने पर जलंधर ने वृन्दा को आलिंगन कर उसके मुख का हर्षित हो चुम्बन किया तब वृन्दा भी अपने पतिको देखकर हर्षित हुई ॥ २३ ॥ और उसी बन में उसके साथ वृन्दा ने बहुत दिनों तक रमण किया ॥ २४ ॥ किसी समय सुरत के अन्त में उसको विष्णुही जानकर धमकाती हुई क्रोधित होकर वृन्दा बोली हे हरे आपको धिक्कार है आप पराई स्त्री के साथ रमण करते हैं ॥ २५ ॥

मैंने भली प्रकार जाना कि आपही वह मायावी तपस्वी थे और दोनों राक्षस आपके द्वारपाल थे ॥ २६ ॥ वेही दोनों राक्षस होकर भार्या को हरण करेंगे और आप भी भार्या के दुःख से दुःखित होकर बन्दरों की सहायता लोगे ॥ २७ ॥ और सब के स्वामी होने पर भी तुम वन २ में घूमोगे और तुम्हारा जो शिष्य बना था

धिक्त्वदीयं हरे शीलं परदाराभिगामिनः ॥ ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ् मायी प्रत्यक्षतापसः ॥२६॥ यौत्वयामायिनौद्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ॥ तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्या तव हरिष्यतः ॥२७॥ त्वं चापि भार्यादुःखार्त्तो वने कपिसहायवान् ॥ भव सर्वेश्वरेणायं यस्ते शिष्यत्वमागतः ॥२८॥ इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दाप्राविशद्धव्यवाहनम् ॥ विष्णुना वार्यमाणापि तस्यामासक्तचेतसा ॥२९॥ ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृन्दान्वितो भस्मरजावगुण्ठितः ॥ तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसंघैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शान्तिम् ॥ ३० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यासंवादे वृन्दा

वही हिरण होवेगा ऐसा कहकर वृन्दा ने अग्नि में प्रवेश किया ॥ २८ ॥ फिर उसमें आसक्त चित्त वाले विष्णु ने मना भी किया तौ भी उसने न माना ॥ २९ ॥ फिर वारंवार वृन्दा ही का स्मरण करते हुए और उसकी चिता की भस्मी और धूलि को लगा २ कर वहां ही रहे फिर मुनि के बहुत समझाने पर भी उनको शांति नहीं मिली ॥ ३० ॥

इति श्री पद्मपुराणे कार्त्तिकमाहात्म्ये वृन्दोपाख्याने भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ नारदजी बोले फिर जलंधर ने शिवजीको अद्भुत पराक्रमी देखकर शिवजी को मोह करता हुआ माया की पार्वती बनाई ॥ १ ॥ रोती हुई और निशुंभादिक दैत्य जिसको माररहे हैं और रथमें बंधी हुई है ऐसी पार्वतीको शिवजीने देखा॥ २॥इस तरहकी पार्वतीको देख

ऽग्निप्रवेशो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम् ॥ चकार मायया गौरीं त्र्यंबकं मोहितुं तदा ॥ १ ॥ रथोपरि च तां बध्वा रुदतीं पार्वतीं शिवः ॥ निशुम्भप्रमुखाद्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः॥ २ ॥गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा शिवोऽप्युद्विग्नमानसः ॥ आवङ्मुखः स्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम् ॥ ३ ॥ ततो जलन्धरो वेगात् त्रिभिर्विव्याध सायकैः ॥ आपुंखमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे ॥ ४ ॥ ततो जज्ञे स तां मायां विष्णुना च प्रबोधितः ॥ रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालातिभीषणः ॥ ५ ॥ तस्यातीव महारौद्रं रूपं दृष्ट्वा

कर व्याकुलचित्त, शिर नीचे किये हुए और अपने पराक्रम को भूलकर शिवजी चुप खड़े होगये ॥ ३ ॥ फिर जलंधरने कान तक खींच कर तीन बाण शिर, छाती और पेट में शिव जी के मारे ॥४॥ तब विष्णु के समझाने पर महादेवजी ने जाना कि यह माया है तब तो शिवजी ने ज्वालामालाओं से अति भयंकर रूप धारण किया ॥ ५ ॥ ऐसे उन

शिवजी का अति भयंकर रूप देख दैत्य उनके संमुख न ठहर कर दशोदिशाओं में भाग गये ॥६॥ तब शिवजीने शुंभ और निशुंभको शाप दिया कि मेरे युद्ध से तुम भाग गये इस से तुम दोनों को गौरी जी मारेंगी ॥७॥ फिर जलंधरने बड़े वेगसे तीखे बाणों की वर्षा करी उससे पृथ्वीतल में घोर अन्धकार छा गया जब तक शिवजी उसके बाणों को काट ही रहे थे कि जलंधरने

महासुराः ॥ न शेकुः संमुखे स्थातुं भेजिरे ते दिशो दश ॥ ६ ॥ ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोःशुम्भनिशुम्भयोः ॥ मम युद्धादपक्रान्तौ गौर्या वध्यौ भविष्यथ ॥ ७ ॥ पुनर्जलन्धरो वेगाद्ववर्ष निशितैः शरैः ॥ बाणान्धकारैः संछन्नं तदा भूमितलं महत् ॥ ८ ॥ यावद्रुद्रश्च चिच्छेद तस्य बाणगणं त्वरात् ॥ तावत्स परिघेणाशु जघान वृषभं बली ॥ ९ ॥ वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तो रणाङ्गणात् ॥ रुद्रेणाकृष्यमाणोऽपि न तस्थौ रणभूमिषु ॥१०॥ ततः परमसंक्रुद्धो रुद्रो रौद्रवपुर्धरः ॥ चक्रं सुदर्शनं वेगात् चिक्षेपादित्यवर्चसम् ॥ ११ ॥ प्रदहन् रोदसी वेगात् पपात वसुधातले ॥ जहा-

उसी समय परिघ से सांडको मारा ॥ ९ ॥ उस प्रहार से सांड रणभूमि से लौट पड़ा और शिवजी के बहुत खींचा तानी करने पर भी रण में नहीं ठहर सका ॥ १० ॥ तब शिवजी ने अति क्रोधित हो और भयंकर रूप धारण कर बड़े वेग से सूर्य के समान तेजस्वी सुदर्शन चक्र छोड़ा ॥ ११ ॥ आकाश और पृथ्वी को भस्म करते हुए वह चक्र

पृथ्वी पर आकर जलंधर के शरीर से लंबे और चौड़े नेत्रवाले शिरको अलग कर दिया ॥ १२ ॥ फिर उसका शरीर पृथ्वी को शब्दायमान करता हुआ रथ से गिर पड़ा और जलंधर का तेज शिवजी में लीन हो गया ॥१३॥ और वैसेही वृन्दा के शरीर से तेज निकल कर पार्वती के शरीर में लीन होगया अब ब्रह्मादिक देवताओं के नयन

र तच्छिरः कायान्महदायतलोचनम् ॥ १२ ॥ रथात्कायः पपातास्य नादयन्वसुधातलम् ॥ तेजश्च निर्गतं देहात् तद्रुद्रे लयमागमत् ॥ १३ ॥ वृन्दादेहोद्भवंतेजस्तद्गौर्यां विलयं गतम्॥ अथ ब्रह्मादयो देवा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः ॥ १४ ॥ प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम् ॥ देवा ऊचुः ॥ महादेव त्वया देवा रक्षिताः शत्रुजाद्भयात् ॥ १५ ॥ किंचिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहे ॥ वृन्दालावण्यसंभ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः ॥ १६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ गच्छध्वं शरणं देवा

हर्ष से खिल पड़े ॥१४॥ शिरसे विष्णुको प्रणाम कर उनके कार्य की प्रशंसा करने लगे और बोले हे महादेव! आपने हम लोगों की शत्रुओं के भय से रक्षा करी है ॥१५॥ और यहां पर और भी कुछ होगया है उसमें हम लोग क्या करें वृन्दाके लावण्य से विष्णु उन्मत्त हो गये हैं और वे उसकी चिता ही पर बैठे हुए हैं ॥ १६ ॥ शिवजी बोले हे देवो !

विष्णु के मोह को छुड़ाने के लिये शरण्य, मोहिनी माया के शरण जाओ वह तुम लोगों का कार्य करेगी ॥ १७ ॥ नारदजी बोले ऐसे कह कर भूतगणोंके साथ अन्तर्धान होगये तब देवता भक्तों पर दया करनेवाली मूलप्रकृति की स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ देवता बोले–जिससे उत्पन्न हुए सत्व, रज और तमोगुण संसार की उत्पत्ति, पालन तथा

विष्णोर्मोहापनुत्तये ॥ शरण्यां मोहिनीं मायां सा वः कार्यं करिष्यति ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः सर्वभूतगणैस्तदा ॥ देवाश्च तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम् ॥ १८ ॥ देवा ऊचुः ॥ यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमो गुणाः सर्गस्थितिध्वंसनिदानकारिणः ॥ यदिच्छयाविश्वमिदं भवाभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ १९ ॥ या हि त्रयोविंशतिभेदशब्दिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा ॥ यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि देवास्तु मूलप्रकृतिं नताः स्म

नाश के आदि कारण हैं और जिसकी इच्छा से संसार का कल्याण अथवा अकल्याण होता है ऐसी मूल प्रकृति को हम लोग प्रणाम करते हैं ॥ १९ ॥ और जो तेइस भेदों से प्रसिद्ध और समस्तसंसार में विद्यमान हैं और जिसके रूप तथा कर्मों को तीनों देवता भी जानने में जड़ हैं अर्थात् नहीं जान सकते ऐसी मूल प्रकृति को हम लोग प्रणाम

करते हैं ॥ २० ॥ और जिसकी भक्ति करने से पुरुष दारिद्र्, भय, मोह, निरादरों को नहीं प्राप्त करते ऐसी भक्तवत्सल मूलप्रकृति को हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ २१ ॥ नारदजी बोले जो इस स्तोत्र का एकाग्रचित्त होकर तीनों सन्ध्या में पाठ करता है उसको दारिद्र् मोह और दुःख स्पर्श भी नहीं करते ॥ २२ ॥ इस प्रकार स्तुति करनेवाले

ताम् ॥ २० ॥ यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यभीमोहपराभवादीन् ॥ न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम् ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ स्तोत्रमेतत् त्रिसन्ध्यं यः पठेदेकाग्रमानसः ॥ दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्ति तम् ॥ २२ ॥ इत्थं स्तुवन्तस्ते देवास्तेजोमण्डलमास्थितम् ॥ ददृशुर्गगनं तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ २३ ॥ तन्मध्याद्भारतीं सर्वे शुश्रुवुर्व्योमचारिणीम् ॥ शक्तिरुवाच ॥ अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि विविधैर्गुणैः ॥ २४ ॥ तत्र गच्छथ ताः कार्यं विधास्यन्ति च वः सुराः ॥ नारद उवाच ॥ शृण्व-

देवताओं ने आकाश के मध्य ज्वालासे दिशाओं को व्याप्त करनेवाला एकमंडल में तेज देखा ॥ २३ ॥ उसके बीचमें से जो आकाशवाणी हुई उसको देवताओं ने सुना । शक्ति बोली मैं ही सत्व रज और तमोगुण तीन प्रकार की हूं ॥ २४ ॥ गौरी लक्ष्मी और सरस्वती इनमें तीनों गुण विद्यमान हैं आपलोग वहां जाइये वेही आपलोगों

के कार्य को करेंगी ॥ २५ ॥ आश्चर्य से खिले नेत्रवाले देवता इस आकाशवाणी को सुनही रहे थे कि वह तेज अन्तर्धान हो गया ॥ २६ ॥ तब उसके कहने से सब देवताओं ने वहां जाकर गौरी लक्ष्मी सरस्वती देवी को बड़ी भक्तिभाव से प्रणाम किया ॥२७॥ देवी सब बोलीं इन तीनों बीजों को जहां पर विष्णु हैं तहां पर बो देवो तो

न्तामिति तां वाचमन्तर्धानमगान्महः ॥ २५ ॥ देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा नृप ॥ ततः सर्वेऽपि ते देवा गत्वा तद्वाक्यनोदिताः ॥ २६ ॥ गौरीं लक्ष्मीं स्वरां चैव प्रणेमुर्भक्तितत्पराः॥ तांस्तान्यातान्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः ॥ २७ ॥ बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यानि च तदोचुः ॥ देवता ऊचुः ॥ इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठते ॥ २८ ॥ निवपध्वं ततः कार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति ॥ नारद उवाच ॥ ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसंघाः प्रगृह्य बीजानि विचिक्षि-

आप लोगों के कार्य की सिद्धि हो जावेगी ॥ २८ ॥ नारद बोले तब प्रसन्न होकर देवता और सिद्धों ने उन बीजों को जहां कन्या के साथ सुख संपत्ति से हीन विष्णु थे वहां पर छींट दिये ॥ २९ ॥ इस सत्य वाक्य के माहात्म्य को जो पढ़ेगा या सुनेगा वह स्वर्ग में जावेगा। और जो मनुष्य इसका पाठ एकाग्र चित्त से सुनेगा उसके

विघ्न नाश होंगे और जो पुत्रहीन नारी अथवा नर इसका पाठ करेंगे उनको भी विघ्न बाधा नहीं होगी॥इतिश्रीपद्मपुराणे का० माहा० बलदेवशर्मकृतभाषाटीकायां जलंधरवधो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ नारदजी बोले वहां बोये हुए तीनों बीजों से धात्री (आंवला) मालती और तुलसी ये तीन वनस्पति हुईं ॥१॥ सरस्वती के बीज से रजोगुणवती

पुस्ते ॥ वृन्दान्वितो भूमितले स यत्र विष्णुः सदा तिष्ठति सौख्यहीनः ॥२६॥ इति श्रीप० का० श्रीकृष्णसत्यासंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ क्षिप्तेभ्यस्तत्र बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन् ॥ धात्री च मालती चैव तुलसी च नृपोत्तम ॥ १ ॥ धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता ॥ गौरीभवा च तुलसी तमः सत्त्वरजोगुणाः ॥ २ ॥ स्त्रीरूपिण्यो वनस्पत्यो दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृप ॥ उत्तस्थौ संभ्रमाद् वृन्दारूपातिशयविभ्रमः ॥ ३ ॥ दृष्टाश्च तेन तारागातकामा

धात्री, लक्ष्मी के बीज से सत्वगुण वाली मालती, और गौरी के बीज से तमोगुणवती तुलसी उत्पन्न हुई ॥ २ ॥ तब स्त्री रूप धारिणी वनस्पतियों को देखकर वृन्दा के अति रूप के संभ्रम से विष्णु उठ खड़े हुए ॥ ३ ॥ कामासक्त चित्तसे विष्णु ने उनकी ओर देखा और तुलसी तथा धात्रीने भी अनुराग से विष्णु ही को देखा और जो बीज

पहलेही से ईर्षासे बोया गया था इसी से उसमें ईर्षा करनेवाली नारी लक्ष्मी के बीज से उत्पन्न हुई मालती बर्बरी इस नाम से प्रसिद्ध हुई और धात्री तथा विष्णु में अनुराग करने से उनकी प्रीति के स्थान में हुई ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ फिर विष्णभगवान उस दुःख को भूलकर धात्री और तुलसी के साथ हर्षित हो और सर्व देवों से नमस्कृत होकर

सक्तेन चेतसा ॥ तं चापि तुलसा धात्री रागेणैव व्यलोकयत् ॥४॥ यच्च लक्ष्म्या पुरा बीजमीर्ष्ययैव समर्पितम् ॥ तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापराऽभवत् ॥५॥ अतः सा बर्बरीत्याख्यामवापाथ विगर्हिता ॥ धात्रीतुलस्यौ तद्रागात् तस्य च प्रीतिदे सदा ॥ ६ ॥ ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु ॥ वैकुण्ठमगमद्धृष्टः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ७ ॥ कार्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते ॥ तुलसीमूलदेशे तु प्रीतिदा साऽथ तत्स्मृता ॥ ८ ॥ तुलसीकाननं राजन् गृहे यस्यावतिष्ठते ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं तु नायान्ति यमकिंकराः ॥ ९ ॥ सर्वपापहरं नित्यं कामदं तुलसीव-

वैकुंठ को चले गये ॥ ७ ॥ इसी से कार्तिक के उद्यापन में तुलसी के मूल में विष्णु की पूजा की जाती है इसी कारण तुलसी विष्णु को प्रसन्न करनेवाली है ॥ ८ ॥ हे राजन् तुलसी का वन जिसके गृह में वर्तमान है वह गृह तीर्थरूप है और उस गृह में यम के दूत नहीं जाने पाते ॥ ९ ॥ सब पापों का विनाशक, पवित्र मनोरथ को पूरण करनेवाले

तुलसी का बन जो लगाते हैं वे यमराज को नहीं देखते ॥ १० ॥ नर्मदा का दर्शन गंगा का स्नान और तुलसी के बन का संसर्ग ये तीनों समान हैं ॥ ११ ॥ तुलसी के लगाने से, जल सींचने से दर्शन से और तुलसी के स्पर्श से कायिक वाचिक मानसिक पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥ और जो तुलसी की मंजरियों से विष्णु और शिवकी

नम् ॥ रोपयन्ति नराः श्रेष्ठास्ते न पश्यन्ति भास्करिम् ॥१०॥ दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च ॥ तुलसीवनसंसर्गः सममेव त्रयं स्मृतम् ॥ ११ ॥ रोपणात्पालनात्सेकाद् दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ॥ तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसंचितम् ॥१२॥ तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम् ॥ न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी न संशयः ॥१३॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा । वासुदेवादयो देवास्तिष्ठन्ति तुलसीदले ॥ १४ ॥ तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति ॥

पूजा करते हैं वे फिर गर्भ में न आकर मुक्ति के भागी होते हैं इस में संदेह नहीं है ॥ १३ ॥ और तुलसी के दल में पुष्करादिक तीर्थ, गंगादिक नदियां और विष्णुआदिक देवता निवास करते हैं ॥ १४ ॥ तुलसी के जड़ की मृत्तिका को शरीर में लगाकर जो प्राणों को छोड़ता है वह चाहे सैकड़ों पापों से युक्त भी हो तोभी उसको यमराज भी नहीं

देख सकता और हे राजन् विष्णु के साथ उसीको सायुज्य मुक्ति होती है यह सत्य है ॥ १५ ॥ तुलसी के काष्ठ का चंदन जो मनुष्य लगाते हैं उनके शरीर को किये हुए पाप भी स्पर्श नहीं करने पाते ॥ १६ ॥ और जहां तुलसी के वन की छाया हो वहां पर पितरों का श्राद्ध या उनके निमित्त दिया हुआ अक्षय होता है ॥१७॥ आंवलों के

यमोपि नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥१५॥ विष्णोः सायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यं नृपोत्तम ॥
तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धार्यते नरः ॥ १६ ॥ तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ॥
तुलसीविपिनच्छाया यत्र यत्र भवेन्नृप ॥ १७ ॥ तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ धात्री
च्छायासु यः कुर्यात् पिण्डदानं नृपोत्तम ॥ १८ ॥ मुक्तिं प्रयान्ति पितरस्तस्य ये निरये स्थिताः ॥
मूर्ध्नि पाणौ मुखे चैव देहे च नृपसत्तम ॥१९॥ धत्ते धात्रीफलं यस्तु स विज्ञेयो हरिः स्वयम् ॥

वृक्षों की छाया में हे राजन् ! जो पिंडदान करते हैं उनके पितर यदि नरक में भी होंय तौभी उनको तृप्ति होती है ॥ १८ ॥ और मस्तक हाथ, मुख, और देह में जो आँवलों के फलों को धारण करते हैं उनको स्वयं विष्णु ही जानना ॥ १९ ॥ आवलों के फल तुलसी और द्वारिका की मिट्टी जिनके शरीर पर नित्य रहती है वह जीवन

मुक्त है ॥ २० ॥ आंवले और तुलसीदलों को जल में मिलाकर जो स्नान करते हैं उनको गंगा के स्नान का फल होता है ॥ २१ ॥ और जो मनुष्य आंवले के पत्ते तथा फलों से देवता की पूजा करते हैं उनको सोना, मणि और मोतियों के चढ़ाने का फल होता है ॥ २२ ॥ कार्तिक मास तुला के सूर्य्य में तीर्थ, मुनि, देवता, और सब यज्ञ आंवले के

धात्रीफलं च तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा ॥ २० ॥ यस्य देहे स्थिता नित्यं जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ धात्रीफलैः समिश्रैश्च तुलसीपत्रमिश्रितैः ॥२१॥ जलैः स्नाति नरस्तस्य गङ्गास्नानफलं स्मृतम् ॥ देवार्चनं नरः कुर्यात् धात्रीपत्रैः फलैस्तथा ॥ २२ ॥ सुवर्णमणिमुक्तौघैरर्चनस्याप्नुयात्फ-लम् ॥ तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञाः सर्वेऽपि कार्तिके ॥ २३ ॥ नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलास्थिते ॥ द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके ॥ २४ ॥ लुनाति स नरो गच्छेन्निरयान-तिगर्हितान् ॥ धात्रीच्छायां समाश्रित्य कार्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः ॥ २५ ॥ अन्नसंसर्गजं पापमावर्षं

वृक्ष में निवास करते हैं ॥ २३ ॥ जो मनुष्य द्वादशी तिथिको तुलसी का पत्ता और कार्तिक मास में आंवले का पत्ता तोड़ता है वह घोर नरक में जाता है ॥ २४ ॥ आंवले की छाया में बैठकर जो कार्तिक में भोजन करता है उसके अन्न के संसर्गों के दोष वर्ष भर केलिये नष्ट हो जाते हैं ॥ २५ ॥ आंवले की जड़ में कार्तिक मास में जो

मनुष्य विष्णु की पूजा करता है उसको सब विष्णुक्षेत्रों के पूजने का फल होता है ॥ २६ ॥ धात्री और तुलसी के माहात्म्य को ब्रह्मा भी वर्णन नहीं कर सकता जैसे विष्णुभगवान के माहात्म्यको कोई वर्णन नहीं करसकता ॥२७॥ धात्री और तुलसी के उत्पत्ति के कारण को जो मनुष्य सुनता या सुनाता है वह सब पापों से मुक्त होकर सबके आगे

तस्य गच्छति ॥ धात्रीमूले तु यो विष्णुं कार्तिके पूजयेन्नरः॥ २६ ॥ विष्णुक्षेत्रेषु सर्वेषु पूजित-स्तेन सर्वदा ॥ धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यमपि देवश्चतुर्मुखः ॥ न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २७ ॥ धात्रीतुलस्युद्भवकारणं यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या ॥ विधूतपाप्मा सह पूर्वजैः स्वैः स्वर्गं व्रजत्यग्रविमानसंस्थैः ॥ २८ ॥ इति श्रीपद्मपु० कार्ति० श्रीकृष्णस० धात्री-तुलस्योर्महिमाकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ पृथुरुवाच ॥ सेतिहासमिदं ब्रह्मन् माहात्म्यं कथितं मम ॥ अत्याश्चर्यकरं सम्यक् तुलस्यास्तच्छ्रुतं मया ॥ १ ॥ यदूर्जव्रतिनः पुंसः फलं

विमान पर चढ़ अपने पूर्वजों के साथ स्वर्ग में जाता है ॥ २८ ॥ इति श्री पद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये बलदेवकृत भाषा टीकायां धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ पृथुराज नारदजी से बोले हे ब्रह्मन् ! आपने तुलसी का बड़ा अद्भुत भली प्रकार से माहात्म्य इतिहास के साथ कहा सो सुना ॥ १ ॥ जो आपने कार्तिक

व्रतीका फल कहा सो फिर उसका माहात्म्य कहिये कि इस व्रतको किसने किया ॥ २ ॥ नारदजी बोले पहले सह्य पर्वत के पास के देश में करवीरपुर में धर्मज्ञ कोई धर्मदत्त नामक ब्राह्मण था ॥ ३ ॥ वह विष्णु के व्रतों को तथा नित्य प्रति विष्णु की पूजा करता था और द्वादशाक्षर मंत्र का जप करनेवाला और अतिथि का प्रिय था ॥४॥ किसी समय

महदुदाहृतम् ॥ तत्पुनर्ब्रूहि माहात्म्यं केन चीर्णमिदं शुभम् ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा ॥ ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्तेति विश्रुतः ॥ ३ ॥ विष्णुव्रतकरः सम्यग्विष्णुपूजारतः सदा ॥ द्वादशाक्षरविद्याया जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः ॥ ४ ॥ कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः ॥ रात्र्यां तुर्यांशशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ५ ॥ हरिपूजोपकरणान् प्रगृह्य व्रजता तदा ॥ तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमदर्शना ॥ ६ ॥ वक्रदंष्ट्रा ल[illegible]ज्जिह्वा

कार्तिकमास में विष्णुजागरण करने के लिये एक प्रहर रात्रि बाकी रहने पर वह ब्राह्मण विष्णु के मन्दिर में गया ॥ ५ ॥ विष्णु की पूजा की सामग्री लेकर वह जारहा था कि उसने बड़ी भयंकर एक राक्षसी को देखा जिसकी टेढ़ी डाढ़ और जिह्वा को लपलपाती है ॥६॥ लाल नेत्र जिसके भीतर घुसगये हैं नंगी जिसके शरीर का मांस सूख गया है

बड़े लंबे ओठ और घरघर शब्द जिसके मुंहसे निकल रहा है ॥ ७ ॥ ऐसी उस राक्षसी को देखकर भय से सब शरीर काँपने लगा तब उस ब्राह्मण ने मारे डर के सब पूजा की सामग्री और जलके पात्र से उसको मारा ॥ ८ ॥ तुलसीके साथ जल से हरिका नाम स्मरण करके जो मारा इसी से उसके सब पाप नष्ट होगये ॥ ९ ॥ तदनन्तर पूर्व

निमग्ना रक्तलोचना ॥ दिगम्बरा शुष्कमांसा लम्बोष्ठी घर्घरस्वरा ॥ ७ ॥ तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कम्पितावयवस्तदा ॥ पूजोपकरणैः सर्वैः पयोभिश्चाहनद्भयात् ॥ ८ ॥ संस्मृत्य तद्धरेर्नाम तुलसीयुक्तवारिणा ॥ सोऽहनत्पातकं यस्मात् तस्मात्तस्याह्यगाल्लयम् ॥ ९ ॥ अथ संस्मृत्य सा पूर्वं जन्मकर्मविपाकजम् ॥ स्वां दशामब्रवीद्विप्रं दण्डवच्च प्रणम्य सा ॥ १० ॥ कलहोवाच ॥ पूर्वकर्मविपाकेन दशामेनां गतास्म्यहम् ॥ तत्कथं तु पुनर्विप्र प्रयास्याम्युत्तमां गतिम् ॥ ११ ॥ अतीव विस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं

जन्म के कर्मों के फल से जो दशा प्राप्त हुई थी उसीको स्मरण करके ब्राह्मण को प्रणाम कर वह बोली ॥१०॥ कलहा बोली हे विप्र पूर्वजन्म के कर्मोंके फल से मैं इस दशा को प्राप्त हुईथी अब मेरी फिर यह उत्तम दशा कैसे हुई ॥११॥ नारदजी बोले । उसको अपने पूर्वजन्म के कर्मों को नम्रहोकर कहती हुई देख अति आश्चर्य संयुक्त होकर वह ब्राह्मण बोला ॥१२॥

धर्मदत्त कहने लगा कि, तेरी किस कर्म के फल से यह दशा हुई और तू कहां की रहने वाली कौन तथा तेरा कैसा स्वभाव था यह सब तू हम से कह ॥ १३ ॥ कलहा बोली हे ब्रह्मन् ! सौराष्ट्र देश में भिक्षुनामक एक ब्राह्मण था उन्हीं की मैं अति निठुर कलहा नामकी भार्या थी ॥ १४ ॥ मैंने अपने पति का कल्याण कभी न किया और न

गता ॥ कुतस्त्या का च किंशीला तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ १३ ॥ कलहोवाच ॥ सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन् भिक्षुनामाऽभवद्द्विजः ॥ तस्याहं गृहिणी पूर्वं कलहाख्यातिनिष्ठुरा ॥ १४ ॥ न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसापि शुभं कृतम् ॥ नार्पितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वञ्चनशीलया ॥ १५ ॥ कलहप्रियया नित्यं मयोद्विग्नमना यदा ॥ परिणेतुं यदाऽन्यां स मतिं चक्रे पतिर्मम ॥ १६ ॥ ततो गरं समादाय प्राणास्त्यक्ता मया द्विज ॥ अथ बध्वा वध्यमानां मां निन्युर्यमकिंकराः ॥ १७ ॥ यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥ यम उवाच ॥ अनया किंकृतं कर्म चित्रगुप्त विलोकय ॥ १८ ॥

मिष्टान्न ही भोजन करने को दिया ॥ १५ ॥ नित्य ही कलह करने वाली हमको देख भय से विह्वलचित्त वाले हमारे पति ने दूसरा विवाह करने की इच्छा की ॥ १६ ॥ तब मैं विष लेकर प्राणों को छोड़ मरगई तब हमको यमदूत बांधकर मारते हुए ले चले ॥ १७ ॥ यमराजने हमको देखकर चित्रगुप्त से पूछा यमराज बोले इसने कौन कर्म किये

हैं सो हे चित्रगुप्त ! देखो ॥ १८ ॥ इसने जो भले या बुरे कर्म किये हैं उसका यह फल भोग करे। कलहा बोली कि मेरे को धमकाता हुआ चित्रगुप्त मेरे से बोला चित्रगुप्त बोला इसने कोई भी शुभ काम नहीं किया, और अपने पतिको मिष्टान्न न देकर यह अकेली ही खा जाती थी ॥ २० ॥ इस से यह अपनी विष्टा खानेवाली

प्राप्नोत्येषा च तत्कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ कलहोवाच ॥ चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्त्सयन्मा-मुवाच सः ॥ ॥ १६ ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ अनया तु कृतं कर्म शुभं किंचिन्न विद्यते ॥ मिष्टान्नं भुञ्जमानेयं न भर्तरि तदर्पितम् ॥ २० ॥ अतश्च वल्गुलीयोन्यां स्वविष्ठादौ च तिष्ठतु ॥ भर्तु-र्द्वेष्ट्री तदाप्येषा नित्यं कलहकारिकी ॥ २१ ॥ विष्ठादां सूकरीं योनिं तस्मात्तिष्ठत्वियं हरे ॥ पाक-भाण्डे सदा भुंक्ते भुंक्ते चैका यतस्ततः ॥ २२ ॥ तस्मादेषा बिडालाऽस्तु स्वजातापत्यभक्षिणी ॥ भर्तारमपि चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया ॥ २३ ॥ तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेकाऽतिनि-

वाली होय, पति से शत्रुता रखती और नित्य कलह करती थी ॥ २१ ॥ इससे यह विष्टा भक्षण करके सूकरी योनि में उत्पन्न होय और जिस पात्र में पाक करती थी उस में अकेली ही भोजन करती थी ॥ २२ ॥ इससे यह अपने बच्चों को खानेवाली बिलाई हावै इसने अपने पति पर क्रोध कर आत्मघात किया ॥ २३ ॥ इससे

यह अतिनिन्दित प्रेतयोनिमें जाय अब आप अपने दूतोंके द्वारा मारवाड देशमें इसको भेज दो ॥ २४ ॥ वहां पर यह बहुत दिनों तक प्रेतयोनि भोग करे फिर ऊपर कही हुई यह पापिनी तीनों योनियों को भोग करेगी ॥ २५ ॥ वहीं मैं पाँच सौ वर्षों से अपने कर्मों के द्वारा भूख और प्याससे नित्य दुःखित होकर प्रेतयोनिमें हूं ॥ २६ ॥ भूख

न्दिता ॥ अतश्चैषा मरुद्देशं प्रापितव्या भटैरियम् ॥ २४ ॥ तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः ॥ उर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्यशुभकर्मणि ॥ २५ ॥ कलहोवाच ॥ साहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ॥ क्षुत्तृड्भ्यां पीडिताविश्य शरीरं वाणिजं त्वहम् ॥ २६ ॥ आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च संगमम् ॥ तत्तीरं संश्रिता यावत् तावत्तस्य शरीरतः ॥ २७ ॥ शिवविष्णु-गणैर्दूरमपकृष्टा बलादहम् ॥ ततः क्षुत्क्षामया दृष्टो मया हि त्वं द्विजोत्तम ॥ त्वद्धस्ततुलसीवा-रिसंसर्गगतपापया ॥ २८ ॥ तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्तिमियाम्यहम् ॥ योनित्रयादग्रभवाद-

और प्यास से पीड़ित होकर बनियां के शरीर में प्रवेश कर मैं कृष्णा और वेणी नदी के संगम पर इस दक्षिण देश में आई हूँ ॥ २७ ॥ उसके तीर पर जब मैं रही तभी उसके शरीर से बल पूर्वक शिव और विष्णु के दूतोंने हमको बाहिर निकाल दिया ॥ २८ ॥ फिर भूखी और प्यासी मैंने हे द्विजोत्तम ! आपको देखा और आपके हाथसे

तुलसी के जल का छींटा पड़ने से मेरा पाप नष्ट होगया ॥ २९ ॥ तब हे विप्रेन्द्र ! मेरे पर कृपा कर बताओ कि आगे होनेवाली तीनों योनियों से तथा इस प्रेत देह से मेरी मुक्ति कैसे होय ॥ इस प्रकार वह ब्राह्मण कलहा का वचन सुन कर उसके कर्मों के फल से उसको बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ और कलहा की ग्लानि देख कर दया से चित्त विचलित

स्माच्च प्रेतदेहतः ॥ २९ ॥ इत्थं विचिन्त्य कलहा वचनं द्विजाग्रणीस्तत्कर्मपाकभवविस्मय-दुःखयुक्तः ॥ तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात् ॥ ३० ॥ इति श्रीपद्मपु०का० श्रीकृष्णसत्यासं०एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ विलयं यान्ति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः ॥ प्रेतदेहस्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता ॥ १ ॥ त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम् ॥ नवै निवृत्तिमायात त्वामनादृत्य दुःखिताम् ॥ २ ॥

हो गया तब थोड़ी देर तक विचार कर बड़े दुःख से वह बोला ॥ ३० ॥ इति श्री प० पु० कार्तिकमाहात्म्ये बलदेवशर्म कृतभाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ धर्मदत्त बोले । तीर्थ, व्रत और दान आदिकों से पाप नष्ट हो जाते हैं परन्तु प्रेतयोनि वालों को इनका अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ तुम्हारी इसमें ग्लानि देखकर मेरा चित्त बड़ा

दुःखित हुआ तुम्हारा इस दुःख से उद्धार किये विना हमको सुख प्राप्त नहीं होगा ॥ २ ॥ तीनों योनियों के फल स्वरूप तुम्हारा पातक बड़ा भारी है और अति निन्दनीय प्रेतयोनि भी थोड़े से पुण्य से नाश नहीं होगी ॥ ३ ॥ इस लिये जन्म से आज तक जो मैंने कार्त्तिक व्रत किये हैं उनके आधे भाग के पुण्य से तुम्हारी सद्गति होय ॥ ४ ॥

पातकं च तवात्युग्रं यद्योनित्रयपातकम् ॥ नवाल्पैः क्षीयते पुण्यैः प्रेतत्वं चातिगर्हितम् ॥ ३ ॥ तस्मादाजन्मजनितं यन्मया कार्तिकव्रतम् ॥ तत्पुण्यस्यार्द्धभागेन सद्गतिं त्वमवाप्नुहि ॥ ४ ॥ कार्तिकव्रतपुण्येन न साम्यं यान्ति सर्वथा ॥ यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्यपि यतो ध्रुवम् ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तमभ्यषेचयत् ॥ तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन्द्वादशाक्षरीम् ॥ ६ ॥ तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा ॥ दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यथेन्दिरा ॥ ७ ॥ ततः सा दण्डवद्भूमौ प्रणनामाथ तं द्विजम् ॥ उवाच सा तदा वाक्यं हर्षगद्गदभाषिणी

क्योंकि यज्ञ, दान तीर्थ ये सब कार्तिक व्रत के पुण्यके समान किसी प्रकार भी नहीं हैं ॥५॥ नारदजी बोले–धर्मदत्त उसको द्वादशाक्षर मंत्र सुनाता हुआ तुलसी सहित जल से जब अभिषेक करही रहा था ॥६॥ तब ही उसकी प्रेतयोनि छूटकर वह प्रज्वलित अग्निशिखा के समान दिव्यरूप धारण कर साक्षात् लक्ष्मी के सदृश होगई ॥७॥ तब उसने ब्राह्मण

को प्रणाम किया और हर्ष से गद्गद होकर वह बोली ॥ ८ ॥ हे द्विजवर ! आपके प्रसाद से मैं नरक से छूट गई और आपने पाप में डूबती हुई के लिये नौका के ऐसा काम मेरा किया ॥ ९ ॥ इस प्रकार वह कही रही थी कि अति देदीप्यमान, और विष्णु के गणों संयुक्त आकाश से उतरते हुये विमान को देखा ॥ १० ॥ फिर उसको पुण्यशील

॥ ८ ॥ कलहोवाच ॥ त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ विमुक्ता निरयादहम् ॥ पापाब्धौ मज्जमानायास्त्वं नौभूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं सा वदती विप्रं ददर्शाथान्तमम्बरात् ॥ विमानं भास्वरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥ १० ॥ अथ सा तद्विमानाग्र्यं द्वाःस्थाभ्यामवरोपितम् ॥ पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेवितम् ॥ ११ ॥ तद्विमानं तदापश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयः ॥ पपात दण्डवद्भूमौ दृष्ट्वा तौ विष्णुरूपिणौ ॥ १२ ॥ पुण्यशीलसुशीलौ च तमुत्थाप्यानतं द्विजम् ॥ समभ्यानन्दतुर्वाक्यमूचतुर्धर्मसंयुतम् ॥ १३ ॥ गणावूचतुः ॥ साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यत्त्वं विष्णुरतः सदा ॥

और सुशील इन दोनों द्वारपालोंने विमान पर बैठाया तथा उसकी सेवा सब अप्सरा करने लगीं ॥ ११ ॥ उस विमान को विस्मय पूर्वक धर्मदत्त ने देखा और उन विष्णु रूप धारी पार्षदों को देख दण्डवत् भूमि में प्रणाम किया ॥ १२ ॥ पुण्यशील और सुशील ने उस नम्र ब्राह्मण को उठाकर और उसकी प्रशंसा करके धर्म संयुक्त वाक्य बोले ॥ १३ ॥

हे द्विजवर ! आपका धन्य २ है कि आप विष्णु की सेवा में तत्पर दुःखितों पर दयावान, और विष्णु के व्रतों में तत्पर रहते हो ॥ १४ ॥ जो आपने बालअवस्था से शुभ कार्तिक व्रत किया था उसके आधे के फल से इसके पूर्व जन्म के किये हुए पाप नष्ट हो गये सैकड़ों पूर्व जन्मों के किये पाप केवल स्नान मात्र ही से इसके नष्ट हो गये

दीनानुकम्पी सर्वज्ञो विष्णुव्रतपरायणः ॥ १४ ॥ आबालत्वाच्छुभं त्वेतद्यत्त्वया कार्तिकव्रतम् ॥ कृतं तस्यार्द्धदानेन यदस्याः पूर्वसंचितम् ॥ १५ ॥ जन्मान्तरशतोद्भूतं पापं तद्विलयं गतम् ॥ स्नानैरेवगतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम् ॥ १६ ॥ हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमास्थितम् ॥ वैकुण्ठं नीयते साधो नानाभोगयुता त्वियम् ॥ १७ ॥ दीपदानभवैः पुण्यैस्तेजसा रूपमास्थिता ॥ तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्तिकव्रतकैः शुभैः ॥ विष्णुसान्निध्यगा जाता त्वया दत्तैः कृपानिधे ॥ १८ ॥ त्वमप्यस्य भव-स्यान्ते भार्याभ्यां सह यास्यसि ॥ वैकुण्ठभुवनं विष्णोः सान्निध्यं च सरूपताम् ॥ १९ ॥ ते धन्याः

॥ १५ ॥ १६ ॥ हरिजागरणादिकों से वह विमान आया और साधो ! यह नाना प्रकार के भोग से संयुक्त इसको वैकुण्ठ में ले जाते हैं ॥ १७ ॥ दीपदान के फल से अति तेजस्विनी यह हुई और तुलसी पूजनादिक कार्तिक व्रतों के प्रभाव से हे कृपानिधे यह विष्णु के समीप रहेगी तुम भी इस जन्म के बाद दोनों भार्याओं के साथ ॥ १८ ॥ १९ ॥ वैकुंठ

लोक में विष्णु के समीप सारूप्य मुक्ति पावोगे वे धन्य, और कृतकृत्य और उन्हीं का जन्म सफल है ॥२०॥ हे धर्मदत्त जिन्होंने विष्णु की भक्ति से आराधना की है क्योंकि अच्छी तरह आराधित विष्णु सब कुछ दे सकते हैं ॥२१॥ उत्तान पाद के पुत्र को जिन्होंने ध्रुव स्थान में पहुंचाया जिसके नाम स्मरण मात्र ही से प्राणियों की सद्गति होती है ॥२२॥

कृतकृत्यास्ते तेषां च सफलो भवः ॥ यैर्भक्त्याऽराधितो विष्णुः किं न यच्छति देहिनाम् ॥ २० ॥ औत्तानचरणिर्येन ध्रुवत्वे स्थापितः पुरा ॥ यन्नामस्मरणादेव देहिनो यान्ति सद्गतिम् ॥ २१ ॥ ग्राहगृहीतो नागेन्द्रो यन्नामस्मरणात्पुरा ॥ विमुक्तः सन्निधिं प्राप्तो जातोऽयं जयसंज्ञकः ॥ २२ ॥ यतस्त्वयाऽर्चितो विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रयास्यसि ॥ बहून्यब्दसहस्राणि भार्याद्वययुतस्यते ॥२३॥ ततः पुण्ये क्षये जाते यदा यास्यसि भूतलम् ॥ सूर्यवंशोद्भवो राजा विख्यातस्त्वं भविष्यसि॥२४॥ नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुनः ॥ तृतीययाऽनया चापि या ते पुण्यार्द्धभागिनी ॥ २५ ॥ तत्रापि

ग्राह से पकड़ा हुआ हस्ती जिनके नाम स्मरण मात्र ही से हस्ति योनि से छूटकर जय नाम का उनके पास का पार्षद बना ॥ २३ ॥ जिस कारण तुमने विष्णु की पूजा की है इसीसे तुम दोनों स्त्रियों के साथ बहुत हजारों वर्षों तक विष्णु के समीप रहोगे ॥ २४ ॥ तुम्हारा जब पुण्य का क्षय होगा तब सूर्य वंशी प्रसिद्ध राजा होवोगे ॥ २५ ॥ और

नाम दशरथ होगा ये दोनों भार्य्या तथा यह तीसरी तुम्हारे आधे पुण्य की हिस्सेदार ये तीनों तुम्हारी भार्य्या होंगी ॥ २६ ॥ वहां पर भी पृथ्वीतल में विष्णु अपनी आत्मा को तुम्हारा पुत्र बनाकर सदा समीप में रहेंगे और देवताओं का कार्य करेंगे ॥ २७ ॥ तुम्हारे इस विष्णु की प्रसन्नता करने वाले कार्तिक व्रत से अधिक यज्ञ, दान

तव सान्निध्यं विष्णुर्यास्यति भूतले॥ आत्मानं तव पुत्रत्वे प्रकल्प्यामरकार्यकृत् ॥ २६ ॥ तव जन्म व्रतादस्माद्विष्णुसन्तुष्टिकारकात् ॥ न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानिवै ॥२७॥ धन्योऽसि विप्राग्र्य यतस्त्वयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ॥ यदर्धभागाप्तफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २८ ॥ इति श्रीप० का० श्रीकृष्णसत्यासं० विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ

और तीर्थ कोई भी नहीं हैं हे द्विजेन्द्र ! तुमको धन्य हैं क्योंकि तुमने जगद्गुरु विष्णु के प्रसन्नतार्थ कार्तिक व्रत किया जिसके आधे पुण्य के फल को भोगनेवाली इसको हम लोग विष्णु के लोक में ले जाते हैं ॥ २८ ॥ इति श्री पद्म पुराणे कार्तिकमाहात्म्ये बलदेव कृत भाषा टीकायां विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ नारदजी बोले ऐसा उनका वचन

सुनकर धर्मदत्त को बड़ा आश्चर्य हुआ उनको प्रणाम करके बोले ॥ १ ॥ भक्तदुःखविनाशक विष्णु की सभी लोग यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ और तपस्या से विधिपूर्वक आराधना करते हैं ॥ २ ॥ उन विष्णु के प्रसन्न और सामीप्य करनेवाले उनमें ऐसा कोई व्रतादिक है जिसके करने से सभी किये के समान हो जायँ ॥ ३ ॥

वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥ धर्मदत्त उवाच ॥ आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुं भक्तार्तिनाशनम् ॥ यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थैस्तपोभिश्च यथाविधि ॥ २ ॥ विष्णुप्रीतिकरं तेषां किंचित्सान्निध्यकारकम् ॥ यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवन्ति हि ॥ ३ ॥ गणावूचतुः ॥ साधु पृष्टं त्वया विप्र शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ सेतिहासं पुरा वृत्तं कथ्यमानं मयाऽनघ ॥ ४ ॥ कान्तिपुर्यां पुरा चोलश्चक्रवर्ती नृपोऽभवत् ॥ यस्याख्ययैव ते देशाश्चोला इति प्रथां गताः ॥ ५ ॥ यस्मिन् शासति भूचक्रं दरिद्रो वापि दुःखितः ॥ पापबुद्धिः सरुग्वापि नैव कश्चिदभून्नरः ॥ यस्याः

हे विप्र ! तुमने अच्छा पूछा इतिहास के सहित प्राचीन वृत्तान्त मैं कहता हूं उसको एकाग्रचित्त से सुनो ॥ ४ ॥ पहले समय में चोल नामक राजा कांची पुरी में हुआ उसी के नाम से उस देश का नाम चोल प्रसिद्ध हुआ ॥ ५ ॥ जिस समय वह राज्य करता था उस समय उसके राज्य में दरिद्र, दुःखी, पापी, रोगी कोई भी मनुष्य नहीं था ॥ ६ ॥

उसने इतने यज्ञ किये थे कि जिसके सोने के यज्ञस्तंभ ताम्रपर्णी नदी के दोनों किनारों पर कुबेर के चैत्ररथ नामक वनके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ७ ॥ हे द्विज ! एक समय वह राजा जहां पर विष्णु भगवान् शेष की शय्या पर योगनिद्रा के आधीन होकर सोये हैं वहां पर गया ॥ ८ ॥ वहां उस राजा ने मणि मोती और सुन्दर सोने के पुष्पों

प्यनन्ययज्ञस्य ताम्रपर्ण्यास्तटावुभौ ॥ सुवर्णयूपैः शोभाढ्यावास्तां चैत्ररथोपमौ ॥ ७ ॥ स कदाचिद्भूद्राजा ह्यनन्तशयनं द्विज ॥ यत्रासौ जगतां नाथो योगनिद्रामुपाश्रितः ॥ ८ ॥ तत्र श्रीरमणं देवं संपूज्य विधिवन्नृपः ॥ मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः ॥ ९ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपविष्टः स तत्रवै ॥ तावद्ब्राह्मणमायान्तमपश्यद्देवसन्निधौ ॥ १० ॥ देवार्चनार्थं पाणौतु तुलस्युदकधारणम् ॥ स्वपुरीवासिनं तत्र विष्णुदासाह्वयं द्विजम् ॥ ११ ॥ स तत्राभ्येत्य विप्रर्षि-

से विधिपूर्वक श्रीविष्णु की पूजा करी ॥ ९ ॥ और दंडवत् प्रणाम कर जब बैठ गया तब ही विष्णु के समीप एक ब्राह्मण को आते हुए देखा ॥ १० ॥ विष्णुजी की पूजा के लिये हाथ में तुलसी और जल लिये हुए था और अपनी कांची पुरी ही में रहनेवाला विष्णुदास नामक वह ब्राह्मण था ॥ ११ ॥ वह ब्राह्मण वहां जाकर विष्णु को

विष्णुसूक्त के मंत्रों से स्नान करवाय कर तुलसी की मंजरी और दलों से पूजा करी ॥ १२ ॥ तुलसी की पूजा से पहले की हुई उस राजा की रत्नों की पूजा ढकी देख क्रोधित होकर राजा बोला ॥ १३ ॥ चोल बोला । हे विष्णुदास ! मैंने माणिक्यों और सुवर्ण के पुष्पों से जो पूजा शोभित की थी उसको तुमने तुलसी के दलों से

देवदेवमपूजयत् ॥ विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमञ्जरीदलैः ॥१२॥ तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां पुरा कृताम् ॥ आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥१३॥ चोल उवाच ॥ माणिके स्वर्णपूजाऽत्र शोभाढ्या या कृता मया ॥ विष्णुदास कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः ॥१४॥ विष्णुभक्तिं न जानासि वराकोऽसि मतो मम ॥ यस्त्विमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो ॥१५॥ इतितद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधः सद्द्विजोत्तमः ॥ राज्ञोगौरवमुल्लंघ्यजगाद वचनं तदा ॥१६॥ विष्णुदास उवाच॥राजन्भक्तिं

कैसे ढक दई ॥ १४ ॥ तुम बिचारे विष्णु की भक्ति को क्या जानो जो तुमने अति सुशोभित पूजा को आच्छादन कर दई ॥१५॥ ऐसा उस राजा का वचन सुनकर ब्राह्मण भी क्रोधित हो और राजा के गौरव को कुछ भी नहीं समझ कर बोला ॥ १६ ॥ हे राजन् ! तुम भक्ति करना नहीं जानते केवल तुमको राजलक्ष्मी का घमंड है अच्छा

तो बताओ कि तुमने इससे पहले कितने विष्णु के व्रत किये हैं ॥ १७ ॥ गण बोले ब्राह्मण के ऐसे वचन सुनकर वह राजा हंसकर विष्णुदास से बड़े गर्वीले वचन बोला ॥ १८ ॥ हे विप्र ! विष्णु की भक्ति के घमंड में आकर यदि तू ऐसा कहता है तो निर्धन और दरिद्री की तेरी भक्ति कितनी है ॥ १९ ॥ और विष्णु के प्रसन्नार्थ तुमने यज्ञ

न जानासि गर्हितोऽसि नृपश्रिया ॥ कियद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत् ॥ १७ ॥ गणावूचतुः ॥ तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः ॥ विष्णुदासं तदा गर्वादुवाच वचनं द्विजम् ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ इत्थं चेद्वदसे विप्र विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः ॥ भक्तिस्ते कियती विष्णोर्दरिद्रस्याधनस्य च ॥१९॥ यज्ञदानादिकं नैव विष्णोस्तुष्टिकरं कृतम् ॥ नापि देवालयं पूर्वं कृतं विप्र त्वया क्वचित् ॥२०॥ ईदृशस्यापि ते गर्व एष तिष्ठति भक्तिजः ॥ तच्छृण्वन्तु वचो मेऽद्य सर्वेऽप्येते द्विजातयः ॥ २१ ॥ साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वादो गमिष्यति ॥ पश्यन्तु सर्वेऽपि ततो

दानादिक नहीं किये और न तुमने कहीं विष्णु का मन्दिर ही बनवाया ॥ २० ॥ इस तरह के होने पर भी तुमको इतना गर्व भक्ति का कभी रह सकता है हे ब्राह्मण लोगों आपलोग सभी मेरे वचनों को सुनो ॥ २१ ॥ आज हम और सभी लोग देखेंगे कि विष्णु का साक्षात् दर्शन किसको होगा इसीसे हमारी और उसकी भक्ति को सभी लोग

जान लेंगे ॥ २२ ॥ गण बोले ऐसा कहकर राजा अपने राजभवन में गया और मुद्गल को आचार्य बनाकर विष्णु यज्ञ का आरम्भ किया ॥ २३ ॥ जिस यज्ञ में बहुत से ऋषि बुलाये गये बहुत अन्न और बहुत दक्षिणा दी गई जो यज्ञ पहले गया क्षेत्र में बहुत संपत्ति से किया था वही यज्ञ यहां भी किया ॥ २४ ॥ विष्णुदास भी उसी मन्दिर में

भक्तिं ज्ञास्यन्ति चावयोः ॥ २२ ॥ गणावूचतुः ॥ इत्युक्त्वा स नृपोऽगच्छन्निजराजगृहं तदा ॥
आरभद्वैष्णवं सत्त्रं कृत्वाचार्यं तु मुद्गलम् ॥ २३ ॥ ऋषिसंघसमाजुष्टं बह्वन्नं बहुदक्षिणम् ॥
यच्च ब्रह्मकृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत् ॥ २४ ॥ विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती ॥
यथोक्तनियमान्कुर्वन् विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा ॥ २५ ॥ माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक् तुलसीवनपालनम् ॥
एकादश्यां हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ २६ ॥ उपचारैः षोडशभिर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः ॥ नित्यं
विष्णोस्तथा पूजा व्रतान्येतानि सोऽकरोत ॥ २७ ॥ नित्यं संस्मरणं विष्णोर्गच्छन्भुवि स्वपन्नपि ॥

व्रती हो विष्णु के प्रसन्नार्थ यथोक्त नियमों को करता हुआ रहने लगा ॥ २५ ॥ माघ और कार्तिक का व्रत, तुलसी के वन की रक्षा और एकादशी को द्वादशाक्षर मंत्र का जप किया ॥२६॥ षोडश उपचार, गीत और नृत्यादि मंगलों से नित्य विष्णु की सेवा पूजा करने लगा ॥२७॥ चलता और पृथ्वी पर सोया हुआ भी नित्य विष्णु का ही

स्मरण करता था और एक दृष्टि से सब प्राणियों में विष्णु ही को देखता था। माघ तथा कार्तिक के विशेष नियमों का पालन करता था और विष्णु के प्रसन्नार्थ विष्णु उद्यापन भी किया ॥२८॥ इस प्रकार व्रत में स्थित विष्णु ही में सर्व प्रकार से तत्पर उन चोलेश्वर और विष्णदास के विष्णकी आराधना करने में बहुत दिन बीत गये ॥ २९ ॥

सर्वभूतस्थितं विष्णुमपश्यत्समदर्शनः ॥ २८ ॥ माघकार्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि ॥ अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थं सोद्यापनविधिं तथा ॥ २९ ॥ एवं समाराधयतोः श्रियः पतिं तयोश्च चोलेश्वरविष्णुदासयोः ॥ कालो जगाम बहुलो व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रियकर्मणोस्तदा ॥३०॥ इतिश्री प० का० श्रीकृष्णसत्यासं०एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ कदाचिद्विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विज ॥ स पाकमकरोत्तावदहरत्कोऽप्यलक्षितः ॥ १ ॥ तमदत्त्वाऽपिसः पाकं पुनर्नैवाकरोत्तदा ॥ सायंकालार्चनस्याऽसौ व्रतभङ्गभयाद् द्विजः ॥ २ ॥ द्वितीयेऽन्हि पुनः पाकं कृत्वा यावत्स

इति प० का० श्रीकृष्णसत्यासंवादे भाषाटीकायां एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ । नारदजी बोले एक समय विष्णुदास रसोई बना ही रहा था कि कोई छिपकर पाक को चुराय लेगया ॥ १ ॥ उस पाक को वहां नहीं देखकर भी सायंकाल की पूजा विधि न होने से व्रत भङ्ग हो जायगा इसी डरसे फिर पाक को नहीं बनाया ॥२॥ दूसरे दिन फिर

पाक बनाकर विष्णु को भोग लगा ही रहा था कि कोई फिर वैसे ही चुराकर ले गया ॥ ३ ॥ इस प्रकार बराबर सात दिनों तक उसका पाक कोई चुरा कर ले जाता था तब आश्चर्य के साथ वह अपने मन में यों विचारने लगा ॥४॥ कि बड़े आश्चर्य की बात है कि मेरे पाक को कौन नित्य चुराकर ले जाता है यह स्थान संन्यासियों का क्षेत्र है इससे

विष्णवे ॥ उपहारार्पणं कर्तुं तावत्कोऽप्यहरत्पुनः ॥ ३ ॥ एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरन्नृप ॥ ततः सविस्मयश्चाथ मनस्येवं विचार्य च ॥ ४ ॥ अहो नित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम ॥ क्षेत्रं संन्यासिनः स्थानं न त्याज्यं मम सर्वथा ॥५॥ पुनः पाकं विधायात्र भुज्यते यदि चेन्मया ॥ सायंकालार्चनं चैव परित्याज्यं कथं भवेत् ॥ ६ ॥ यदि पाकं विधायैव भोक्तव्यं तु मया न तत् ॥ अनिवेद्य हरेः सर्वं वैष्णवैर्न तु भुज्यते ॥ ७ ॥ उपोषितोऽहं सप्ताहं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः ॥ अद्य

इसको किसी प्रकार भी छोड़ नहीं सकता ॥ ५ ॥ यदि मैं पुनर्वार पाक बनाकर भोजन करता हूं तो सायंकाल की पूजा कैसे छोड़ूं ॥ ६ ॥ यदि मैं पाक बना ही कर भोजन कर लूं तो यह भी नहीं हो सकता क्योंकि बिना भगवान् को भोग लगाये वैष्णव भोजन नहीं करते ॥ ७ ॥ आज सात दिन यहां उपवास करते हुए बीतगये और मैं व्रती हूं आज

अच्छी तरह से पाक की रक्षा करूंगा ॥ ८ ॥ ऐसे विचार कर रसोई बनाकर कहीं छिपकर बैठगया इसी समय पाक के अन्न को चुराने के लिये एक चाण्डाल को खड़ा देखा ॥ ९ ॥ भूख से दुर्बल शरीर सूखा मुख हो रहा है और केवल हड्डी तथा चमड़ा ही देह में बच गया है ऐसे उस चांडाल को देखकर ब्राह्मण का दया से चित्त दुःखित हो

संरक्षणं सम्यक् पाकस्याऽस्य करोम्यहम् ॥ ८ ॥ इति पाकं विधायासौ तत्रैवालक्षितः स्थितः ॥ तावद्ददर्श चाण्डालं पाकान्नहरणे स्थितम् ॥ ९ ॥ क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्मावशेषितम् ॥ तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत् कृपया खिन्नमानसः ॥ १० ॥ विलोक्यान्नहरं विप्रस्तिष्ठ तिष्ठेत्यधावत ॥ कथमश्नासि तद्रुक्षं घृतमेतदगृहाण भो ॥ ११ ॥ इत्थं वदन्तं विप्राग्र्यमायान्तं स विलोक्य च ॥ वेगादधावत्तद्भीत्या मूर्छितश्च पपात ह ॥ १२ ॥ भीतं तं मूर्छितं दृष्ट्वा चाण्डालं स द्विजाग्रणीः ॥

गया ॥ १० ॥ अन्न को ले जाते देखकर ठहरो २ कहकर ब्राह्मण पीछे दौड़ा अरे यह रूखा कैसे खायगा घृत भी लेता जा ॥ ११ ॥ ऐसे कहते हुए ब्राह्मण को आता देखकर बेग से दौड़ने से मारे डरके मूर्च्छित हो गिर पड़ा ॥ १२ ॥ डरा हुआ मूर्च्छित उस चांडाल को देख वह ब्राह्मण वेग से पास जाकर वस्त्र के आंचल से वायु

करने लगा ॥ १३ ॥ इतने ही में शंख, चक्र गदा पीताम्बर चार भुजा श्रीवत्स चिह्न मुकुट धारण किये हुए तीसी के पुष्प के समान और कौस्तुभ मणि छाती में सुशोभित है ऐसे साक्षात् श्रीविष्णु भगवान ने उसको दर्शन दिये ॥१४॥ ॥ १५ ॥ उनका दर्शन करके सात्विक भाव होजाने से वह ब्राह्मण स्तुति अथवा प्रणाम भी न कर सका ॥ १६ ॥

वेगादभ्येत्य कृपया स्ववस्त्रान्तैरवीजयत् ॥ १३ ॥ अथोपस्थितमेवासौ विष्णुदासो व्यलोकयत् ॥ साक्षान्नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥ पीताम्बरं चतुर्बाहुं श्रीवत्साङ्ककिरीटिनम् ॥ अतसीपुष्पसंकाशं कौस्तुभोरस्थलं विभुम् ॥ १५ ॥ तं दृष्ट्वा सात्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः ॥ स्तोतुं चैव नमस्कर्तुं तदा नालं बभूव सः ॥ १६ ॥ अथ शक्रादयो देवास्तत्रैवाभ्यागयुस्तदा ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चापि जगुश्च ननृतुर्मुदा ॥ १७ ॥ विमानशतसंकीर्णं देवर्षिशतसंकुलम् ॥ गीतवादित्रनिर्घोषं स्थानं तदभवत्तदा ॥ १८ ॥ ततो विष्णुः समालिंग्य स्वभक्तं सात्विकव्रतम् ॥ सारूप्यमा-

अब वहां पर इन्द्रादि देवता आगये और गन्धर्व अप्सरा आकर वहां गाने और नाचने लगीं ॥ १७ ॥ वह स्थान सैकड़ों विमानों से पूर्ण सैकड़ों देवर्षियों से संयुक्त तथा गाने और बजाने से शब्दायमान हो गया ॥१८॥ तब विष्णु

सात्विक व्रतधारी अपने भक्त को आलिंगन करके अपना स्वरूप बनाकर वैकुण्ठ को लेगये ॥१९॥ उत्तम विमान पर चढ़ विष्णु के समीप जाते हुए उस विष्णुदास को यज्ञ में दीक्षित चोल राजा ने देखा ॥२०॥ वैकुण्ठ भवन में जाते हुए विष्णुदास को देखकर अपने गुरु मुद्गल को बुलाकर चोलेश्वर बोला ॥ २१ ॥ जिसकी ईर्षा से मैंने यज्ञ दानादिक

त्मनो दत्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम् ॥ १९ ॥ विमानवरसंस्थं तं गच्छन्तं विष्णुसन्निधिम् ॥ दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासं ददर्श सः ॥ २० ॥ वैकुण्ठभुवनं यान्तं विष्णुदासं विलोक्य सः ॥ स्वगुरुं मुद्गलं वेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत् ॥ २१ ॥ यत्स्पर्धया मया चैव यज्ञदानादिकं कृतम् ॥ स विष्णुरूपधृग्विप्रो याति वैकुण्ठमन्दिरम् ॥२२॥ दीक्षितेन मया सम्यक् सत्रेऽस्मिन्वैष्णवे त्वया ॥ हुतमग्नौ कृता विप्रा दानाद्यैः पूर्णमानसाः ॥ २३ ॥ नैवाद्यापि स मे देवः प्रसन्नो जायते ध्रुवम् ॥ विष्णुदासस्य भक्त्यैव साक्षात्कारं ददौ हरिः ॥ २४ ॥ तस्माद्दानैर्न यज्ञैश्च नैव विष्णुः

किये वह ब्राह्मण विष्णु का रूप धारण करके वैकुंठ को जाता है ॥ २२ ॥ मैंने यज्ञ में दीक्षा लेकर इस वैष्णव यज्ञ को विधिपूर्वक किया और अग्नि में हवन तथा ब्राह्मणों को दानादिकों से पूर्ण मनोरथ किया ॥ २३ ॥ आज तक भी विष्णु हमारे पर क्यों नहीं प्रसन्न हुए विष्णुदास के भाव ही से विष्णु ने विष्णुदासको साक्षात् दर्शन

दिया ॥ २४ ॥ इसी कारण दानादि तथा यज्ञों से विष्णु प्रसन्न नहीं होते उनके दर्शन में भक्ति ही केवल आदि कारण है ॥ २५ ॥ ऐसे कहकर अपने भानजे को राजगद्दी देदी क्योंकि बाल्यावस्था ही से यज्ञ में दीक्षित होने से कोई पुत्र नहीं हुआ था ॥ २६ ॥ इसीलिये आज तक भी उस देश में राज्य के भागी उसी नियम

प्रसीदति ॥ भक्तिरेव परं तस्य निदानं दर्शने विभो ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा भागिनेयं स्वमभ्यषिञ्चन्नृपासने ॥ आबाल्याद्दीक्षितो यज्ञे ह्यपुत्रत्वमगाद्यतः ॥ २६ ॥ तस्माद्द्यापि तद्देशे सदा राज्यांशभागिनः ॥ स्वस्रेया एव जायन्ते तत्कृताविधिवर्तिनः ॥ २७ ॥ यज्ञवाटं ततोऽभ्येत्य यज्ञकुण्डाग्रतःस्थितः ॥ त्रिरुच्चैर्व्याजहाराशु विष्णुं संबोधयंस्तदा ॥ २८ विष्णोर्भक्तिं स्थिरां मह्यं देहि भो कमलापते ॥ यथा भजामि देवत्वां मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ इत्युक्त्वासोऽपतद्वह्नौ सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ २९ ॥ मुद्गलस्तु तदा क्रोधाच्छिखामुत्पाटयत्स्वकाम् ॥ ततस्त्वद्यापि तद्गोत्रे

के अनुसार बहिन के ही पुत्र होते हैं ॥ २७ ॥ फिर वह यज्ञ स्थान में जाकर यज्ञकुंड के सम्मुख खड़ा होकर विष्णु को तीन बार पुकारा ॥ २८ ॥ कि हे विष्णो इसको आप में अचल भक्ति दो जिससे मैं आपका मन वाणी और कर्म से भजन करूं ॥ २९ ॥ और मुद्गल ने क्रोधित होकर अपनी शिखा उखाड़ डाली इसी से उसके गोत्र में आज

तक भी शिखा रहित होते हैं ॥ ३० ॥ इतने ही में भक्तवत्सल विष्णु ने कुंड के सम्मुख दर्शन दिये और चौलेश्वर को आलिंगन करके विमान पर चढ़ाय लिया ॥ ३१ ॥ उसको आलिंगन करके अपना रूप देकर देवतों से संयुक्त और चौलेश्वर को साथ ले वैकुंठ भवन में विष्णु चले गये ॥ ३२ ॥ जो विष्णुदास था वह पुण्यशील और जो

मुद्गला विशिखा बभुः ॥ ३० ॥ तावदाविर्भवद्विष्णुः कुण्डाग्नेर्भक्तवत्सलः ॥ तमालिंग्य विमानाग्र्यं समारोहयदच्युतः ॥ ३१ ॥ तमालिंग्यात्मसारूप्यं दत्त्वा वैकुण्ठमन्दिरम् ॥ तेनैव सह देवेशो जगाम त्रिदशैर्वृतः ॥३२॥ यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशीलनामा ॥ आवामुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण ॥ ३३ ॥ इतिश्रीपद्मपुराणे कार्तिक० श्रीकृ० स० विष्णुदासचोलोपाख्यानं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ धर्मदत्त उवाच ॥ जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वाःस्थौ पुरःस्थितौ किंतु ताभ्यां पुरा चीर्णं तस्मात्तद्रूपधारिणौ ॥ १ ॥ गणावूचतुः ॥

चौलेश्वर था वह सुशील नामक ये दोनों विष्णु ने ॥ ३३ ॥ अपने रूपधारी द्वारपाल बनाये इति श्री पद्म पुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्री कृ० स० संवादे विष्णुदास चौलेश्वरोपाख्यानं नाम द्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥ धर्मदत्त बोला जय और विजय ने पूर्वजन्म में क्या पुण्य किया था जिससे विष्णु का रूप धारण कर उनके द्वारपाल बने ॥ १ ॥

गण बोले ! तृणबिन्दु की पुत्री देवहूती में कर्दम ऋषि की दृष्टि ही से दो पुत्र हुए ॥ २ ॥ उनमें बड़ा जय और छोटा विजय हुआ पीछे उसी देवहूती से योगशाली कपिलदेवजी हुए ॥ ३ ॥ जय और विजय दोनों ही विष्णुभक्ति में तत्पर, सब इन्द्रियों के कार्यों को विष्णु ही में लगाने वाले और धर्मात्मा हुए ॥ ४ ॥ नित्य अष्टाक्षरी मंत्र का जप

तृणबिन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यां पुरा द्विज ॥ कर्दमस्य तु दृष्ट्यैव पुत्रौ द्वौ संबभूवतुः ॥ २ ॥
ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चैव नामतः ॥ तस्यामेवाभवत्पश्चात् कपिलो योगधर्मवित् ॥ ३ ॥
जयश्च विजयश्चैव विष्णुभक्तिरतौ सदा ॥ तन्निष्ठेन्द्रियग्रामौ तु धर्मशीले बभूवतुः ॥ ४ ॥
नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतकरावुभौ ॥ साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चनेसदा ॥ ५ ॥
राज्ञा कदाचिदाहूतौ तावुभौ यज्ञकर्मणि ॥ जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणपूजितौ ॥ ६ ॥ जयस्त-
त्राभवद्ब्रह्मा याजको विजयोऽभवत् ॥ ततो यज्ञविधिं कृत्स्नं परिपूर्णं च चक्रतुः ॥ ७ ॥ मरुतोऽ-

और नित्य विष्णु के व्रत करने वाले दोनों हुए इन दोनों को नित्य पूजा के समय विष्णु भगवान् साक्षात् दर्शन देते थे ॥ ५ ॥ कभी यज्ञ कर्म में चतुर इन दोनों को यज्ञ में राजा के बुलाने पर देवर्षि गणों से सेवित ये दोनों गये ॥ ६ ॥ उसमें जय ब्रह्मा और विजय याजक हुआ फिर सर्व यज्ञ की विधि कराकर परिपूर्ण किया ॥ ७ ॥ मरुत्

राजा ने यज्ञान्त स्नान करके उनको बहुत द्रव्य दिया और उसको लेकर दोनों अपने आश्रम में आगये ॥८॥ विष्णु की पूजा और प्रसन्नार्थ वे दोनों द्रव्य को बांटने के समय आपस में ईर्षा करने लगे ॥ ९ ॥ जय बोला कि दोनों का बराबर भाग होना चाहिये विजय बोला कि नहीं जितना जिसने पाया है वही उस का है ॥ १० ॥ तब लोभी

वभृथस्नातस्ताभ्यां वित्तं ददौ बहु ॥ तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥ ८ ॥ यजनाय पथग्विष्णोस्तुष्ट्यर्थं तौ ततो मुनी ॥ तद्धनं विभजन्तौ तु पस्पर्धाते परस्परम् ॥ ९ ॥ जयोऽब्रवी त्समो भागः क्रियतामिति तत्र सः ॥ विजयश्चाब्रवीन्नैतद्यल्लब्धं येन तस्य तत् ॥ १० ॥ ततोऽ-शपज्जयः क्रोधाद्विजयं लुब्धमानसः ॥ गृहीत्वा न ददास्येतत् तस्माद्ग्राहो भवेति तम् ॥११॥ विजयस्त्विति, तं शापं गृहीत्वा सोऽशपच्चतम्॥मदभ्रान्तोऽशपस्त्वं मां तस्मान्मातङ्गतां व्रज॥१२॥ तत्तदा चक्रतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चने विभुम् ॥ शापयोश्च निवृत्तिं तौ ययाचेते रमापतिम् ॥१३॥

जय ने क्रोधित हो विजय को शाप दिया कि तुम लेकर नहीं देते हो इससे तुम ग्राह होवो ॥ ११ ॥ विजय ने भी उस शाप को स्वीकार करके जय को शाप दिया कि तूने उन्मत्त होकर मेरे को शाप दिया इसीसे तुम हाथी होवो ॥ १२ ॥ तब पूजा के समय आये हुए विष्णु से शाप को कहकर उसकी निवृत्ति दोनों मांगने लगे ॥ १३ ॥ जय

और विजय बोले हे देव ! हमलोग आपके भक्त हैं और ग्राह तथा हस्ती की योनि में जाकर कैसे छूटेंगे ॥ १४ ॥ भगवान् बोले हमारे भक्तों का वचन कभी भी झूठ नहीं हो सकता यमराज की भी यह सामर्थ्य नहीं है ॥१५॥ पूर्व में प्रह्लाद के वचन से स्तम्भ में से हम निकले और अंबरीष के वाक्य से हमको दशरूप धारण कर प्रकट होना पड़ा

जयविजयावूचतुः ॥ भक्तावावां कथं देव ग्राहमातङ्गयोनिगौ ॥ भविष्यावः कृपासिन्धो तच्छापो विनिवर्त्यताम् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति ॥ यमोऽपि नान्यथा कर्तुं शक्नोति न कदाचन ॥ १५ ॥ प्रह्लादवचसा स्तम्भेऽप्याविर्भूतोह्यहं पुरा ॥ ततोऽम्बरीषवाक्येन जातोऽहं दशधा किल ॥ १६ ॥ तस्माद्युवामिमौ शापावनुभूय स्वयं कृतौ ॥ लभतां मत्पदं नित्यमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिः ॥ १७ ॥ गणावूचतुः ॥ ततस्तौ ग्राहमातङ्गावभूतां गण्डकीतटे॥ जातिस्मरौ च तद्योन्यामपि विष्णुव्रते स्थितौ ॥ १८ ॥ कदाचि-

॥ १६ ॥ इसी अपने ही दिये हुए शापों को भोगकर मेरे स्थान में आजावोगे ऐसा कहकर विष्णु अन्तर्धान हो गये ॥ १७ ॥ तब वे दोनों गण्डकी नदी के तट पर ग्राह और हाथी हुए जातिस्मरण होने के कारण इस योनि में भी विष्णु के व्रत करते थे ॥ १८ ॥ किसी समय कार्तिक की पूर्णमासी को हाथी स्नान करने को गया तब

पूर्व जाति को स्मरण करते हुए ग्राह ने हाथी को पकड़ लिया ॥ १६ ॥ ग्राह से पकड़े हुए हस्ती ने भी विष्णु का स्मरण किया ही था कि शंख, चक्र गदा पद्मधारी विष्णु वहां प्रकट होगये ॥ २० ॥ तब उन दोनों ग्राह और हस्ती को सुदर्शन चक्र से उद्धार किया अपना रूप देकर दोनों को विष्णु वैकुंठ में लेगये ॥ २१ ॥ उसी दिन से

त्स गजः स्नातुं कार्तिक्यां गण्डकीं गतः ॥ तावज्जग्राह तं ग्राहः संस्मरन् शापकारणम् ॥ १६ ॥ ग्राहग्रस्तो ह्यसौ नागः सस्मार श्रीपतिं तदा ॥ तावदाविर्भवद्विष्णुश्चक्रशंखगदाधरः ॥ २० ॥ तस्ततौ ग्राहमातङ्गौ चक्रं क्षिप्त्वासमुद्धृतौ ॥ दत्त्वैव निजसारूप्यं वैकुण्ठमनयद्विभुः ॥ २१ ॥ ततः प्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमिति स्थित ॥ चक्रसंघर्षणाद्यस्मिन् ग्रावाणोऽपि हि लाञ्छिताः ॥ २२ ॥ ताविमौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयस्तथा ॥ नित्यं विष्णुप्रियौ द्वाःस्थौ पृष्टौ यौ हि त्वया द्विज ॥ २३ ॥ अतस्त्वमपि धर्मज्ञ नित्यं विष्णुव्रते स्थितः ॥ त्यक्तमात्सर्यदम्भोऽपि भव-

उस स्थान का नाम हरिक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ चक्र के घिसने से जहां के पत्थर भी चिन्हित बने हैं ॥ २२ ॥ वे ही दोनों लोक में जय और विजय नाम से प्रसिद्ध हुए। विष्णु के प्यारे द्वारपालों के विषय में जो तुमने पूछा था सो हे द्विज ! हमने कहा ॥ २३ ॥ इसी कारण हे धर्मज्ञ ! तुम भी विष्णु के व्रत नित्य किया करो सब ईर्ष्या और कपट

छोड़कर सम दृष्टि से सब को देखा करो ॥ २४ ॥ तुला मकर और मेष की संक्रान्ति में प्रातःकाल नित्य स्नान एकादशी का व्रत तुलसी वनकी रक्षा किया करो ॥ २५ ॥ ब्राह्मण गौ और वैष्णवों की सेवा करना मसूर कांजी और बैङ्गन मत खाया करो ॥ २६ ॥ इसी प्रकार हे धर्मदत्त तुम भी देह छूटने पर उस विष्णु के स्थान को हमलोगों के

स्व समदर्शनः ॥ २४ ॥ तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भव ॥ एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणानथ गाश्चापि वैष्णवांश्च सदा भज ॥ मसूरिकामारनालवृन्ताकान्यपि माऽत्स्व च ॥ २६ ॥ एवं त्वमपि देहान्ते तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ प्राप्नोषि धर्मदत्त त्वं तद्भक्तयैव यथा वयम् ॥२७॥ तवाजन्मव्रतादस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारकात् ॥ न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥ २८ ॥ धन्योऽसि विप्राग्र्य यतस्त्वयैतद् व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ॥ यदर्धभागाप्तफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं तौ धर्मदत्तं

समान प्राप्त करोगे ॥ २७ ॥ जन्म से विष्णु के प्रसन्न करने वाले इन व्रतों के समान अधिक फलदायी तीर्थ दान यज्ञ कोई भी नहीं है ॥२८॥ हे विप्र ! तुमको धन्य है क्योंकि तुमने जगद्गुरु विष्णु के प्रसन्न करने वाले व्रत किये हैं जिस व्रत के आधे फल को प्राप्त करनेवाली इसको हमलोग बैकुंठ ले जाते हैं ॥ २९ ॥ नारदजी बोले इस प्रकार

धर्मदत्त को उपदेश देकर उस कलहा को साथ लेकर विष्णुलोक में चले गये ॥ ३० ॥ धर्मदत्त भी विश्वास करके विष्णु के व्रत करने लगा और देहान्त में दोनों स्त्रियों के साथ विष्णु लोक में गया ॥ ३१ ॥ इति श्री प० का० भा० कलहायाः वैकुण्ठप्राप्तिर्नाम त्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥ पृथु बोले हे नारद ब्रह्मा और वेणी के तीर पर शिव

तमुपदिश्य विमानगौ ॥ तथा कलहया सार्धं वैकुण्ठभुवनं गतौ ॥ ३० ॥ धर्मदत्तो ह्यसौ जातप्रत्ययस्तद्व्रते स्थितः ॥ देहान्ते तद्विभोः स्थानं भार्याभ्यां संयुतोऽभ्यगात् ॥ ३१ ॥ इतिहासमिमं पुराभवं शृणुते श्रावयते च यः पुमान् ॥ इह सन्निधिकारिणीं मतिं लभते सत्कृपया जगद्गुरोः ॥ ३२ ॥ इति श्रीप०का०मा०श्रीकृ०स०सं० कलहाया वैकुण्ठप्राप्तिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ पृथुरुवाच ॥ कृष्णावेण्योस्तटात्तस्माच्छिवविष्णुगणैः पुरा ॥ वणिक्शरीरात्कलहा निरस्ता कथिता त्वया ॥ १ ॥ प्रभावोऽयं तयोर्नद्योः किं वा क्षेत्रस्य तस्य वा ॥ तन्मे कथय

और विष्णु के गणों ने बनियें के शरीर से कलहाको निकाल दिया यह आप पहले कह चुके हैं ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ ! इन नदियों का तथा इस क्षेत्रका क्या माहात्म्य है सो आप हमसे कहिये क्योंकि हमको बड़ा

आश्चर्य हुआ है ॥ २ ॥ नारदजी बोले कृष्णा श्रीकृष्ण का शरीर और वेणी महादेव का साक्षात् शरीर है इनके संगम का माहात्म्य ब्रह्मा भी नहीं कह सकते ॥ ३ ॥ तो भी इनकी उत्पत्ति कहता हूं सुनो चाक्षुष मन्वन्तर में ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ सत्य पर्वतकी सुन्दर शिखर पर यज्ञ करने को उद्यत हुए तब ब्रह्माजी सब

धर्मज्ञ विस्मयोऽत्र महान्मम ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ कृष्णा कृष्णतनुः साक्षाद्वेणी देवो महेश्वरः॥ तत्संगमप्रभावं तु नालं वक्तुं चतुर्मुखः ॥ ३ ॥ तथापि तत्समुत्पत्तिं कीर्तयिष्यामि तां शृणु ॥ चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वं मनुर्देवपितामहः ॥ ४ ॥ सह्याद्रिशिखरे रम्ये यजनायोद्यतोऽभवत् ॥ स कृत्वा यज्ञसंभारान सर्वदेवगणैः सह ॥ ५ ॥ युक्तो हरिहराभ्यां च तद्गिरेः शिखरं ययौ ॥ भृग्वादयो मुनिगणा मुहूर्ते ब्रह्मदैवते ॥ ६ ॥ तस्य दीक्षाविधानाय समाजं चक्रुरादृताः॥ अथ ज्येष्ठां स्वरां पत्नीमाह्वयांचक्रुरञ्जसा ॥ ७ ॥ सा शनैराययौ तावद्भृगुर्विष्णुमुवाच ह ॥ भृगुरुवाच ॥

देवगणोंके साथ यज्ञकी सब सामग्री लेकर शिव और विष्णु के सहित उस पर्वत की शिखर पर आये तब भृगु आदिक मुनियों ने ब्राह्म मुहूर्त में दीक्षा देनेका विचार किया तब ब्रह्माकी बड़ी स्त्री स्वरा को शीघ्रही बुलाया ॥५-६-७॥

वह धीरे २ आही रही थी कि भृगु विष्णु से बोले हे विष्णो आप स्वरा को शीघ्र बुलाया था सो क्यों नहीं आई ॥८॥ और मुहूर्त टल रहा है तब दीक्षा कैसे दी जाय। श्रीकृष्ण बोले यदि स्वरा शीघ्र नहीं आवै तो गायत्री हो का यहां दीक्षा विधान कर दीजिये ॥ ९ ॥ यह पुण्य कर्म में इनकी स्त्री नहीं है नारदजी बोले इसी प्रकार महादेवजी ने भी

विष्णो स्वरा त्वयाहूताप्यायाता न कथं त्वरात् ॥ ८ ॥ मुहूर्तातिक्रमश्चैव कार्यो दीक्षाविधिः कथम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ न याति चेत्स्वरा शीघ्रं गायत्र्यत्र विधीयताम् ॥ ९ ॥ एषापि न भवेत्तस्य भार्या किं पुण्यकर्मणि ॥ नारद उवाच ॥ एवमेव हि रुद्रोऽपि विष्णोर्वाक्यममन्यत ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा च भृगुर्वाक्यं गायत्रीं ब्रह्मणस्तदा ॥ निवेश्य दक्षिणे भागे दीक्षाविधिमथाकरोत् ॥ ११ ॥ यावद्दीक्षाविधिं तस्य विधेश्चक्रुर्मुनीश्वराः ॥ तावदभ्याययौ तत्र स्वरा यज्ञस्थलं नृप ॥ १२ ॥ ततः सा दीक्षितां दृष्ट्वा गायत्रीं ब्रह्मणा सह ॥ सापत्न्येर्ष्यापरा क्रोधात् स्वरा वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

विष्णु के कहने का समर्थन किया ॥ १० ॥ ऐसा भृगु के वचन को सुनकर ब्रह्मा के दाहिनी ओर बैठाकर दीक्षा विधान कर दिया ॥ ११ ॥ मुनीश्वर ब्रह्मा का दीक्षा विधान करही रहे थे कि वहाँ यज्ञस्थलमें स्वरा चली आई ॥ १२ ॥ तब ब्रह्मा के साथ गायत्री को दीक्षित देखकर सौतिन पर ईर्षा कर क्रोध से स्वरा बोली ॥ १३ ॥

अपूज्यों की जहाँ पूजा होती है और पूज्यों की पूजा नहीं होती वहां अकाल मरण और भय ये तीन होते हैं ॥१४॥ यह जो ब्रह्मा के दक्षिण भाग में मेरे स्थान पर आप बैठी है इसी कारण जिसको लोग नहीं देखें ऐसी गुप्त होकर यह नदी होयगी ॥ १५ ॥ और आप लोगोंने मेरे स्थान पर इस छोटी को बैठाया है इसलिये आप लोग भी जड़

स्वरोवाच ॥ अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः ॥ त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥ १४ ॥ येयं च दाक्षिणे भागे उपविष्टा मदासने ॥ तस्माल्लोकैस्तदा दृश्या गुप्तरूपास्तु निम्नगा ॥ १५ ॥ मदासने कनिष्ठेयं भवद्भिः सन्निवेशिता ॥ तस्मात्सर्वे जडीभूता नदीरूपा भविष्यथ ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ ततस्तच्छापमाकर्ण्य गायत्री कम्पिताधरा ॥ समुत्थायाशपद्देवैर्वार्यमाणापि तां स्वराम् ॥ १७ ॥ गायत्र्युवाच ॥ तव भर्ता यथा ब्रह्मा ममाप्येषस्तथा खलु ॥ वृथा शापस्त्वया दत्तो भव त्वमपि निम्नगा ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ ततो हाहाकृताः सर्वे शिवविष्णुमुखाः

रूप होकर नदी होवोगे तब उसके शापको सुनकर क्रोधसे उसके ओठ कांपने लगे ॥ १६ ॥ और देवताओंके मना करने पर भी स्वरा को भी शाप दे दियो ॥ १७ ॥ गायत्री बोली ब्रह्माजी जैसे तुम्हारे पति हैं वैसे हमारे भी हैं इससे तुमने हमको व्यर्थ शाप दिया अतः तुम भी नदी होवोगी ॥ १८ ॥ नारदजी बोले तब तो शिव विष्णु आदिक देवताओंने

हाहाकार मचाया और स्वरा को दंडवत् प्रणाम कर स्वराकी प्रार्थना करने लगे ॥ १९ ॥ देवता बोले हे देवि ! जो आपने सभी ब्रह्मादिक देवताओंको शाप दिया यदि हम लोग जड़रूप नदी होजायँगे ॥ २० ॥ तब निश्चयही सब लोक नष्ट होजायंगे हम सबोंने मूर्खता से यह काम किया है इससे यह शाप आप लौटा लीजिये ॥ २१ ॥ स्वरा बोली हे

सुराः ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ स्वरां तत्र विजिज्ञपुः ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवि सर्वे वयं शप्ता ब्रह्माद्या यत्त्वयाऽधुना ॥ यदि सर्वे जडीभूता भविष्यामोऽत्र निम्नगाः ॥ २० ॥ तदा लोकत्रयं ह्येतद्विनश्यति हि निश्चितम् ॥ अविवेकः कृतस्तस्माच्छापोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥ २१ ॥ स्वरोवाच ॥ नार्थितो हि गणाध्यक्षो यज्ञादौ यत्सुरोत्तमाः ॥ तस्माद्विघ्नं समुत्पन्नं मत्क्रोधजमिदं खलु ॥ २२ ॥ नापि मद्वचनं ह्येतदसत्यं खलु जायते ॥ तस्मात्स्वांशैर्जडीभूता यूयं भवथ निम्नगाः ॥ २३ ॥ आवामपि सपत्न्यौ च स्वांशाभ्यामपि निम्नगे ॥ भविष्यावोऽत्र भो देवाः पश्चिमा-

देवताओं आप लोगोंने यज्ञके प्रारम्भ में गणेशजी की पूजा नहीं की इसीसे मेरे क्रोधसे यह विघ्नउपस्थित हुआ ॥ २२ ॥ और मेरा यह वचन भी झूठा नहीं होसकता इससे आप लोग अपने ॥ २३ ॥ अंशोंसे जड़ होकर नदी होजावो और हम

भी दोनों सौतिन पश्चिमवाहिनी नदी अपने २ अंशोसे होवेंगी ॥ २४ ॥ नारदजी बोले हे राजन् ! ऐसा उसका वचन सुनकर ब्रह्मा विष्णु शिव आदिक सभी देवता अपने २ अंशों से नदीरूप होगये ॥ २५ ॥ उनमें विष्णु कृष्णा, शिवजी वेणी और ब्रह्मा कुकुद्मती नामक नदी हुए ॥ २६ ॥ और सब देवता अपने २ अंशोंको जड बनाकर फेंक

भिमुखावहे ॥ २४ ॥ नारद उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ जडीभूता वयं नद्यः स्वांशैर्बत तदा नृप ॥ २५ ॥ तत्र विष्णुरभूत्कृष्णा वेणी देवो महेश्वरः ॥ ब्रह्मा कुकुद्मती चापि पृथगेवाभवन्नृप ॥ २६ ॥ देवाः स्वानपि तानंशान् जडीकृत्वा विचिक्षिपुः ॥ सह्याद्रिशिखरेऽभ्यस्ते पृथगासंस्तु निम्नगाः ॥ २७ ॥ देवांशैः पूर्ववाहिन्यो बभूवुः पश्चिमावहाः ॥ तत्पत्न्यंशैः पृथक् तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥ गायत्री च स्वरा चैव पश्चिमाभिमुखे तदा ॥ योगेनाभवतां नद्यौ सावित्रीति प्रथां गते ॥ २९ ॥ ब्रह्मणा स्थापितौ तत्र यज्ञे हरिहरावुभौ ॥

दिये वे सब भी सह्याद्रि शिखरों से अलग २ नदीरूप होगये ॥२७॥ देवताओं के अंश से पूर्ववाहिनी और उनकी स्त्रियों के अंशोंसे सैकड़ों हजारों पश्चिमवाहिनी नदियाँ हुईं ॥ २८ ॥ गायत्री और स्वरा पश्चिमवाहिनी होकर दोनों एक साथ चलीं दोनों का नाम सावित्री पड़ा ॥ २९ ॥ ब्रह्माने वहां पर विष्णु और शिव की स्थापना की

और वे दोनों देवता महाबल अतिबल नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ३० ॥ इस पापविनाशक कृष्णा की उत्पत्ति को जो सुनै या सुनावे उसको कृष्णासंगम के दर्शन और स्नान का सकल फल हो जाता है ॥ इति श्री प० पु० का० मा० भा० टीकायां चतुर्विंशोध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण बोले हे प्रिये ! ऐसे उसके बचन सुनकर पृथुको बड़ा आश्चर्य हुआ तब

महाबलातिबलिनौ नाम्ना देवौ बभूवतुः ॥ ३० ॥ कृष्णोद्भवं पापहरं पुमान्यः शृणोति यः श्राव-यते च भक्त्या ॥ स्यात्तस्य पुंसः सकलं फलं यत् तद्दर्शनस्नानगमोद्भवं स्मृतम् ॥ ३१ ॥ इति श्री प० का० श्रीकृ० स० सं० कृष्णावेण्युत्पत्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा पृथुर्विस्मितमानसः ॥ संपूज्य नारदं सम्यग्विससर्ज तदा प्रिये ॥ १ ॥ तस्मा-द्व्रतत्रयं ह्येतन्ममातीव प्रियंकरम् ॥ माघकार्तिकयोस्तद्वत् तथैवैकादशीव्रतम् ॥ २ ॥ वनस्पतीनां तुलसी मासानां कार्तिकः प्रियः ॥ एकादशी तिथीनां च क्षेत्राणां द्वारका मम ॥ ३ ॥ एतेषां सेवनं

नारदजी की पूजा कर उनको बिदा किया ॥ १ ॥ इसीलिये माघ कार्त्तिक और एकादशी का व्रत हमको अति प्यारे हैं ॥ २ ॥ बनस्पतियों में तुलसी मासों में कार्तिक तिथियों में एकादशी और क्षेत्रों में द्वारिका हमको प्यारी हैं ॥ ३ ॥

इन्हींका जो जितेन्द्री होकर सेवन करता है वह जैसा मेरा प्रिय होगा वैसा यज्ञादिकों से नहीं होता ॥ ४ ॥ जो मनुष्य इनको नियम पूर्वक करते हैं उनको मेरी प्रसन्नता से पापों का भय नहीं होता ॥ ५ ॥ सत्यभामा बोली हे नाथ ! आपने यह एक बड़ी आश्चर्य की बात कही कि दूसरे के दिये हुए पुण्य से कलहा की मुक्ति होगई ॥ ६ ॥

यस्तु करोति नियतेन्द्रियः ॥ स मे वल्लभतां याति न तथा यजनादिभिः ॥ ४ ॥ पापेभ्यो न भयं तेन कर्तव्यं नियमादपि ॥ एतेषां सेवनं कान्ते कुर्वतां मत्प्रसादतः ॥ ५ ॥ सत्यभामोवाच ॥ विस्मापनीयं तन्नाथ यत्त्वया कथितं मम ॥ परदत्तेन पुण्येन कलहा मुक्तिमागता ॥ ६ ॥ इत्थंप्रभावोऽयं मासः कार्तिकस्ते प्रियंकरः ॥ स्वामिद्रोहादिपापानि स्नानपुण्यैर्गतानि यत् ॥ ७ ॥ दत्तं चेल्लभ्यते पुण्यं तत्परेण कृतं विभो ॥ अदत्तं केन मार्गेण लभ्यते वा न वेति च ॥ ८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ अदत्तान्यपि पुण्यानि पापान्यपि यथा नरैः ॥ प्राप्यते कर्मणा येन तद्यथावन्निशामय

ऐसे माहात्म्य वाला यह कार्तिक मास आपको प्यारा है कि पतिद्रोहादिक पाप स्नान ही के पुण्य से नष्ट होगया ॥ ७॥ दूसरों ने पुण्य किया है वह देने से प्राप्त होता है और बिना दिया हुआ पुण्य किसी मार्ग से मिलता है या नहीं ? श्रीकृष्ण बोले । बिना दिया पुण्य भी और पाप जिस मार्ग से मिलता है वह सुनो ॥ ८ । ९ ॥ सत्ययुगादिकों में

देश और ग्राम कुलोंकी पुण्य या पाप मिलता था परन्तु कलियुग में केवल कर्त्ताही को पाप और पुण्यका फल होता है ॥१०॥ साथ संग बिना कियेही यह अवस्था कही है और साथ संग रहने से जैसे होता है वह सुनो ॥११॥ एक योनि में मैथुन और एक पात्रमें भोजन करने से पाप और पुण्य का आधा भाग मिलता है ॥ १२ ॥ पढ़ाना यज्ञ कराना

॥ ९ ॥ देशग्रामकुलानि स्युर्भागभाञ्जिकृतादिषु ॥ कलौ तु केवलंकर्ता फलभुक् पुण्यपापयोः ॥ १० ॥ अकृतेऽपि हि संसर्गे व्यवस्थेयमुदाहृता ॥ संसर्गात्पुण्यपापानां यथा याति निबोध तत् ॥ ११ ॥ फलार्धं प्राप्नुयान्मर्त्यो यथावत्पुण्यपापयोः ॥ अध्यापनाद्याजनाद्वाप्येकपङ्क्त्यशनादपि ॥ १२ ॥ तुर्यांशं पुण्यपापानां परोक्तं लभते नरः ॥ एकासनादेकयानान्निःश्वासस्य गतागतेः ॥ १३ ॥ षडंशंफलभागिस्यान्नियतं पुण्यपापयोः ॥ स्पर्शनाद्भाषणाद्वापि परस्य स्तवनादपि ॥१४॥ दशांशपुण्यपापानां नित्यं प्राप्नोति मानवः ॥ दर्शनश्रवणाभ्यां च मनोध्यानात्तथैव च॥१५॥ परस्य

और एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करने से पुण्य और पाप का चौथा हिस्सा मनुष्य को मिलता है ॥ १३ ॥ दर्शन से सुनने से और चित्त के ध्यान करने से दूसरों के पुण्य और पापों का सौवां भाग प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ दूसरों की निन्दा चुगली और जो धिक्कारता है वह उसको अपना पुण्य देकर पाप ले लेता है ॥ १५ ॥ पुण्य और पाप करने

वाले मनुष्यों की जो दूसरा सेवा करता है वह स्त्री नौकर और शिष्यको छोड़कर कोई मनुष्य उसको सेवा के योग्य जो द्रव्य नहीं देता वह सेवा के योग्य उसके पुण्य फलका भागी होता है ॥ १६ । १७ ॥ एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेवालोंकी परोसी हुई पत्तल को जो लाँघता है वह पुरुष उसके पुण्यका छठा भाग ले लेता है ॥ १८ ॥

पुण्यपापानां शतांशं प्राप्नुयान्नरः ॥ परस्य निंदां पैशून्यं धिक्कारं च करोति यः ॥ १६ ॥
तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रददाति सः ॥ कुर्वतः पुण्यकर्माणि सेवां यः कुरुते नरः ॥ १७ ॥
पत्नीभृतकशिष्येभ्यो यदन्यः कोऽपि मानवः ॥ तस्य सेवानुरूपं च द्रव्यं किंचिन्न दीयते ॥१८॥
सोऽपि सेवानुरूपेण तत्पुण्यफलभाग्भवेत् ॥ एकपंक्त्यशनतां यस्तु लंघयेत्परिवेषणम् ॥ १६ ॥
तत्पुण्यस्य षड़ंशं च लभेद्यस्तु विलंघितः ॥ स्नानं संध्यादिकं कुर्वन् यः स्पृशेद्वा बभाषते ॥२० ॥
तत्पुण्यकर्मषष्ठांशं दद्यात्तस्मै विनिश्चितम् ॥ धर्मोद्देशे तु यद्द्रव्यमपरं याचते नरः ॥ २१ ॥

स्नान संध्यादिक करते हुए मनुष्यको जो स्पर्श करता अथवा बोलता है तो वह मनुष्य अपने पुण्यका छठा हिस्सा उसको देदेता है ॥ १९ ॥ धर्म करने के लिये जो मनुष्य दूसरों से धन मांगता है उस दान में जिसका धन लगता है वह उसको पुण्य का फल देदेता है ।। २० ॥ दूसरे के धनको चुराकर जो पुण्य करता है उस मनुष्य को चोरी करने का पाप

होता है और जिसका वह धन है उसको पुण्य का फल होता है ॥ २१ ॥ ऋण को बिना दियेही जो मनुष्य मर जाता है तो वह धनी उस ऋणके सदृश पुण्य को प्राप्त करता है शिक्षा और सलाह देनेवाला सामग्री जुटाने वाला और प्रेरणा करनेवाला पुरुष पाप और पुण्य के छठे हिस्से को प्राप्त करता है ॥ २२।२३ ॥ राजा प्रजाओं का गुरु

तत्कर्मजं यस्य धनं तस्य दत्त्वाप्नुयात्फलम् ॥ अपहृत्य परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः ॥ २२ ॥ कर्मकृत्पापभाक्तत्र निर्धनस्तद्भवं फलम् ॥ नापकृत्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः ॥ २३ ॥ धनी तत्पुण्यमादत्ते तद्धर्मस्यानुरूपतः ॥ बुद्धिदाताऽनुमन्ता च यश्चोपकरणप्रदः ॥ २४ ॥ प्रेरकश्चापि षष्ठांशं प्राप्नुयात्पुण्यपापयोः ॥ प्रजाभ्यः पुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ २५ ॥ शिष्याद्गुरुः स्त्रियो भर्ता पिता पुत्रात्तथैव च ॥ स्वपत्युरपि पुण्यस्य योषिदर्धमवाप्नुयात् ॥ २६ ॥ चेत्तस्या-

शिष्यों का पति अपनी स्त्री का और पिता पुत्रका किया हुआ पुण्य और पाप का छठा हिस्सा ले लेता है ॥ २४ ॥ पतिको संतोषित करनेवाली और उसके कहने के अनुरूप चलने वाली स्त्री अपने पतिके पुण्य का आधा भाग ले लेती है ॥ २५ ॥ दूसरों के हाथों से जो पुण्य कर्म करता है वह नौकर तथा अपने पुत्रको छोड़कर करने वाला पुण्य

का छठा भाग ग्रहण करता है ॥२६॥ जीविका देनेवाला जीविका ग्रहण करनेवाले के पुण्य के छठे हिस्से का ग्रहण करता है यदि अपनी अथवा दूसरे की सेवा न करावे तो ॥ २७ ॥ इसी प्रकार दूसरों ने किये हुए पुण्य पाप विना दिये हुए भी मिलते हैं परन्तु यह नियम कलियुगका नहीं है कलियुगमें तो कर्ताही को पुण्य पाप भोगने पड़तेहैं ॥२८॥

नुव्रता शश्वद्वर्तते तुष्टिकारिणी ॥ परहस्तेन दानानि कुर्वतः पुण्यकर्मणः ॥ २७ ॥ विना भृतकपुत्राभ्यां कर्त्ता षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ वृत्तिदो वृत्तिसंभोक्तुः पुण्यं षष्ठांशमुद्धरेत् ॥ २८ ॥ आत्मनो वा परस्यापि यदि सेवां न कारयेत् ॥ २९ ॥ इत्थं ह्यदत्तान्यपि पुण्यपापान्यायान्ति नित्यं परसंचितानि ॥ कलौ स्वयं वै नियमो न कार्यः कर्तैव भोक्ता खलु पुण्यपापयोः ॥ ३० ॥ शृणुष्व चास्मिन्नितिहासमुग्रं पुराभवं पुण्यमतिप्रदं च ॥ ३१ ॥ इति श्रीप०का० श्रीकृष्णस० सं०पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ पुरावन्तीपुरे कश्चिद्विप्र आसीद्धनेश्वरः ॥ ब्रह्मकर्म-

इस विषय में एक पुराना और बड़ा उग्र तथा पवित्र और बुद्धिवर्द्धक इतिहास सुनो ॥२९।३०।३१॥ इति श्री का० मा० भा० पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण बोले पहले अवंती पुरी में ब्राह्मणके कर्मों से रहित, पापी दुष्टमति कोई

धनेश्वर नामक ब्राह्मण रहता था ॥ १ ॥ वह रस कंबल चमड़ा आदिकोंका व्यापारी थो, चोरी वेश्यागमन मधुपान करता था और उसका किसी कारण से चित्त भी दुःखी रहा करता था ॥ २ ॥ खरीदने और बेचने के लिये वह देश देश में घूमता था किसी समय वह धनेश्वर माहिष्मती पुरोमें गया ॥ ३ ॥ महिष नामक किसी राजा ने उसको

परिभ्रष्टः पापकर्मा सुदुर्मतिः ॥ १ ॥ रसकम्बलचर्माद्यैरसौ ऽसत्यानृतादिभिः ॥ स्तेयवेश्यासुरापानयुक्तः संतप्तमानसः ॥ २ ॥ देशाद्देशान्तरं गच्छन्न क्रयविक्रयकारणात् ॥ माहिष्मतीं पुरीमागात् कदाचित्सधनेश्वरः ॥ ३ ॥ माहिषेण कृता पूर्वं तस्मान्माहिष्मतीति सा ॥ यस्यां च निम्नगा भाति नर्मदा पापनाशिनी ॥ ४ ॥ कार्तिकव्रतिनस्तत्र नानाग्रामगतान्नरान् ॥ स दृष्ट्वा विक्रयं कुर्वन् मासमेकमुवास सः ॥ ५ ॥ स नित्यं नर्मदातीरे भ्रमन्विक्रयकारणात् ॥ ददर्श ब्राह्म·

बसाई थी इसी से उसका नाम माहिष्मती पड़ा जिसके कोटके बाहिर पापनाशिनी नर्मदा नदी शोभित होती थी ॥४॥ बहुत देशों से आ २ कर कार्तिकव्रत करनेवाले वहाँ पर रहते थे अर्थात् वहाँ पर मेला लगता था सो देखकर धनेश्वर खरीदता बेचता हुआ एक मास वहाँ ही रहगया ॥ ५ ॥ वस्तुओं को बेचने के लिये नर्मदा के तीर पर घूमता हुआ

जब देवताओं के पूजन में लगे हुए ब्राह्मणों को उसने देखा ॥ ६ ॥ कोई पुराण पढ़ रहा है कोई सुन रहा है कोई नृत्य गान और बजाने में लगा है और कोई विष्णु के भजन सुन रहा है ॥ ७ ॥ कोई विष्णु के चिन्हों को कोई तुलसी की माला धारण किये हुए हैं जहां तहां उसने यही कौतुक देखा ॥ ८ ॥ नित्य योंही घूमते हुए उसके साथ

णान्स्नातान् जपदेवार्चने स्थितान् ॥ ६ ॥ कांश्चित्पुराणं पठतः कांश्चिच्च श्रवणे रतान् ॥ नृत्य-गायनवादित्रविष्णु श्रवणतत्परान् ॥ ७ ॥ विष्णुमुद्राङ्कितान्कांश्चिन्मालातुलसिधारिणः ॥ ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्र तत्र धनेश्वरः ॥ ८ ॥ नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात् ॥ वैष्णवानां यथा विष्णोर्नामसंस्मरणं लभन् ॥ ९ ॥ एवं मासस्थितः सोऽथ कार्तिकोद्यापने विधिम् ॥ क्रिय-माणं ददर्शासौ भक्त्या जागरणं हरेः ॥ १० ॥ पौर्णमास्यां ततोऽपश्यद्विप्रगोपूजनादिकम् ॥ दक्षिणाभोजनाद्यं च दीयमानं व्रतस्थितैः ॥ ११ ॥ ततश्चास्तमये चैव दीपोत्सवविधिं तदा ॥

वैष्णवों का दर्शन बात चीत और विष्णु का नाम स्मरण होता रहा ॥ ९ ॥ इसी प्रकार एक मास वहाँ रह कर कार्तिक व्रत के उद्यापन की विधि और जागरण उसने देखा ॥ १० ॥ कार्तिकव्रतियों ने जो पूर्णमासी को ब्राह्मण व गौ की पूजा दक्षिणा देना भोजन करवाना भी उसने देखा ॥ ११ ॥ और महादेवजी की प्रसन्नता के लिये सायं-

काल में दीपोत्सव देखा ॥ १२ ॥ त्रिपुरासुर के तीनों पुरों का दाह इसी तिथि में महादेवजी ने किया इसी से इस तिथि में भक्त लोग यह उत्सव मनाते हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य मेरे और शिवजी में भेदभाव मानता है उसकी सब पुण्य क्रिया निःसन्देह निष्फल है ॥ १४ ॥ फिर वह धनेश्वर पूजादिकों को देखता हुआ घूम रहा था कि काले

क्रियमाणं ददर्शासौ प्रीत्यर्थं त्रिपुरद्विषः ॥ १२ ॥ त्रिपुराणां कृतो दाहो यतस्तस्यां शिवेन तु ॥ अतस्तु क्रियते तस्यां तिथौ भक्तैर्महोत्सवः ॥ १३ ॥ मम रुद्रस्य यः कश्चिदन्तरं परिकल्पयेत् ॥ तस्य पुण्यक्रियाः सर्वा निष्फलाः स्युर्नसंशयः ॥ १४ ॥ ततः पूजादिकं पश्यन् बभ्राम स धनेश्वरः ॥ तावत्कृष्णाहिना दष्टो विह्वलः स पपात ह ॥ १५ ॥ अपश्यन्पतितं लोकाः परिवव्रुः कृपान्विताः ॥ तुलसीमिश्रितैस्तोयैस्तन्मुखं परिमार्जितम् ॥ १६ ॥ अथ देहं परित्यक्तं तं बध्वा यमकिंकराः ॥ ताड्यमानाः कशाघातैर्निन्युः संयमनीं रुषा ॥ १७ ॥ चित्रगुप्तस्तु तं दृष्ट्वा यमा-

सांप के काटने से विह्वल गिर पड़ा ॥ १५ ॥ उसको गिरा देख दया से वहां के मनुष्यों ने उसको घेर लिया और उसके मुख पर तुलसीदल संयुक्त जल के छीटे देने लगे ॥ १६ ॥ जब उसने शरीर त्याग दिया तब उसको बांधकर कोड़ों से मारते हुए यमदूत यमपुरी को लेगये ॥ १७ ॥ चित्रगुप्त ने निवेदन किया कि इसने बाल्यावस्था से आज

तक केवल कुकर्म ही किया है ॥ १८ ॥ चित्रगुप्त बोला और इसके पुण्य तो दिखाई ही नहीं देते और पापों को तो मैं वर्ष भर में भी नहीं कह सकता ॥ १९ ॥ यह केवल दुष्ट पापमूर्त्ति ही दिखाई देता है इससे इसको कल्प पर्यन्त नरक ही पचाना चाहिये ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण बोले वह यमराज क्रोधित होकर और कालाग्निके समान अपना रूप

यावेद्यत्तदा ॥ आबालत्वात्तेन पुरा कर्म यद्दुष्कृतं कृतम् ॥ १८ ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ नैवास्य दृश्यते किंचिदाबाल्यात्सुकृतं क्वचित् ॥ दुष्कृतं शक्यते वक्तुं वर्षेणापि न भास्करे ॥ १९ ॥ पापमूर्तिरयं दुष्टः केवलं दृश्यते विभो ॥ तस्मादाकल्पमर्यादं निरये परिपच्यताम् ॥२०॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ वज्रतुल्यं वचः क्रोधाद्यमः प्राह स्वकिंकरान् ॥ दर्शयन्नात्मनो रूपं तच्च कालाग्निसन्निभम् ॥ २१ ॥ यम उवाच ॥ भोप्रेतपतयश्चैनं वध्यमानं समुद्गरैः ॥ कुम्भीपाके प्रक्षिपत दुष्टं कल्मषदर्शनम् ॥ २२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ततो मुद्गरनिर्भिन्नमूर्द्धानं प्रेतपोऽनयत् ॥ कुम्भीपाके च तं

दिखाता हुआ अपने नौकरों से बोला ॥ २१ ॥ भो प्रेतपतियों ! पाप स्वरूपी दुष्ट को अपनी मूसरों से मारते हुए इस को कुम्भीपाक नरक में गिरावो ॥ २२ ॥ फिर प्रेतपति अपनी मुद्गर से उसका शिर फोड़ लेगये और तेल के

औंटने से शब्दायमान कुम्भीपाक में गिराय दिया ॥ २३ ॥ ज्योंही धनेश्वर को कुम्भीपाक में गिराया त्यौं ही उसकी अग्नि ठंढी होगई जैसे पहले प्रह्लाद को गिराने से अग्नि ठंढी होगई थी ॥ २४ ॥ इस बड़े भारी आश्चर्य को देख कर प्रेतपतियों ने आश्चर्य में आकर यमराज से सब वृत्तान्त कहा ॥ २५ ॥ यमराज उस आश्चर्य को देख कर और

क्षिप्त्वा तैलकणनशब्दिते ॥ २३ ॥ यावत्क्षिप्तश्च तत्रासौ तावच्छीतलतां ययौ ॥ कुम्भीपाको यथावह्निः प्रह्लादक्षेपणात्पुरा ॥ २४ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रेतपो विस्मयान्वितः ॥ तस्मादागत्य तत्सर्वं यमायावेदयत्तदा ॥ २५ ॥ यमस्तु कौतुकं दृष्ट्वा प्रेतपेन निवेदितम् ॥ आः किमेतदिति प्रोक्त्वा तमानीय व्यचारयत् ॥ २६ ॥ तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्रहसंस्त्वरम् ॥ यमेन पूजितः सम्यक् तं दृष्ट्वा वाक्यमब्रवीत् ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ नैवायं निरयान्भोक्तुमर्हो ह्यरुणनन्दन ॥ यस्मादेतस्य संजातं कर्म यन्निरयपाहम् ॥२८॥ यः पुण्यकर्मिणां कुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम् ॥ ततः

यह क्या हुआ है ऐसा कह कर उसको बुलाय विचार करने लगा ॥ २६ ॥ इतने ही में वहां नारद जी आगये यमने उनकी सविधि पूजा करी तब उस ब्राह्मण को देख कर नारद जी बोले ॥ २७ ॥ हे सूर्यपुत्र ! यह नरक भोगने के योग्य नहीं है कारण इसके अन्तसमय में नरक भोग के नाश करने वाले कर्म इससे होगये हैं ॥ २८ ॥ जो पुण्यात्मा

मनुष्यों के दर्शन स्पर्श और संभाषण करते हैं उसके पुण्य का छठा हिस्सा उसको मिलता है ॥ २९ ॥ अनेक कार्तिक व्रत करनेवाले मनुष्यों के साथ एक मास तक इस धनेश्वर ने संग साथ किया है इससे यह उनके पुण्य का भागी है ॥ ३० ॥ और उन्हों की इसने सेवा की है इससे संपूर्ण व्रत के पुण्य का भागी यह है इसी कारण कार्तिक

षडंशमाप्नोति पुण्यस्य नियतं नरः ॥२९॥ संख्यातीतैस्तु संसर्गं कृतवान्वै धनेश्वरः॥ कार्तिकव्रतिभिर्मासं तेषां पुण्यांशभागयम्॥३०॥परिचर्याकरस्तेषां संपूर्णव्रतभागयम् ॥ अत ऊर्जव्रतोद्भूतपुण्यसंख्या न विद्यते ॥३१॥ कार्तिकव्रतिनां पुंसां पातकानि महान्त्यपि ॥ प्रदहत्यात्ममहसा विष्णुः सद्भक्तवत्सलः ॥ स्नातश्च नर्मदातोयैस्तुलसीमिश्रितैस्त्वयम् ॥ ३२ ॥ वैष्णवैः स्नापितो विष्णोर्नाम संश्रावयन्मृतः ॥ तस्मान्निर्गतपापोऽयं सद्गतिं प्राप्तुमर्हति ॥ वैष्णवानुग्रही यस्मान्निरये नैव पच्यताम् ॥ ३३ ॥ आर्द्रशुष्कैर्यथा पापैर्निरये भागसन्निधिः ॥ प्राप्यते सुकृतैस्तद्वत् स्वर्गस्य

व्रत के पुण्य के फल का कोई ठिकाना नहीं है ॥३१॥ कार्तिक व्रत करने वाले मनुष्यों के बड़े पापों को भी भक्तवत्सल भगवान् अपने तेज से भस्म करदेते हैं ॥ ३२ ॥ अंत समय में तुलसीदल से संयुक्त नर्मदा के जल से विष्णु का नाम स्मरण करते हुए वैष्णवों ने इसको स्नान करवाया है ॥ ३३ ॥ इससे इसके पाप सब नष्ट हो जाने से यह

अच्छी गति प्राप्त करने के योग्य है। जिस पर वैष्णव लोग दया करते हैं वह नरक भोग नहीं कर सकता ॥ ३४ ॥
इति श्री प० का० माहा० भा० टी० षडविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण बोले। फिर प्रेतपति यम कीआज्ञासे धनेश्वर

सन्निधिस्तथा ॥ ३४ ॥ तस्मादनार्द्रपुण्यो हिं यत्तयोनिस्थितस्त्वयम् ॥ विलोक्य निरयान्सर्वान् पापभोगप्रदर्शकान् ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इत्युक्त्वा गतवति नारदे ससौरिस्तद्वाक्यश्रवण-विबुद्धतत्सुकर्मा ॥ तं विप्रे पुनरनयत्स्वकिंकरेण तान्सर्वान्निरयगणान्प्रदर्शयिष्यन् ॥ ३६ ॥ इति श्रीप० का० श्रीकृष्णस० सं० षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ततो धनेश्वरं नीत्वा निरयान्प्रेतपोऽब्रवीत् ॥ दर्शयिष्यंस्तु तान्सर्वान् यमानुज्ञाकरस्तदा ॥ १ ॥ प्रेतप उवाच ॥ पश्येमान्निरयान्घोरान् धनेश्वर महाभयान् ॥ एषु पापकरा नित्यं पच्यन्ते यमकिंकरैः ॥ २ ॥ तप्तवालुकनामायं निरयो घोरदर्शनः । यस्मिन्नन्ते दग्धदेहाः क्रंदन्ते

को नरकों में लेजाकर और उनको दिखलाता हुआ बाला ॥ १ ॥ हेधनेश्वर ! अति भयंकर और घोर इन नरकोंको देखो जिन्हों में पापी लोगों को यमदूत नित्य ही पचाया करते हैं ॥ २ ॥ यह तप्तवालुक नामक घोर दर्शन नरक

है जिसमें देह जलने से पापी लोग चिल्ला रहे हैं ॥ ३ ॥ बलिवैश्वदेव करने के अन्त में अर्थात् भोजन के समय जो भूँके अतिथियों को भोजन नहीं देते वे इसमें अपने कर्मों से पचाये जाते हैं ॥ ४ ॥ गुरु, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वेद, राजा, इनको जो लात मारते हैं उनके इसमें पैर जलाये जाते हैं ॥ ५ ॥ यह नरक छ प्रकार का है यह नाना प्रकार

पापकारिणः ॥ ३ ॥ अतिथीन्वैश्वदेवान्ते क्षुत्क्षामानागतांश्चते ॥ न पूजयन्ति ते ह्यंते पच्यन्ते स्वेन कर्मणा ॥ ४ ॥ गुर्वग्निब्राह्मणान्गाश्च वेदान्मूर्द्धाभिषिक्तकान् ॥ ताडयन्ति पदा ये वैतेनिर्दग्धांघ्रयस्त्विमे ॥ ५ ॥ षड्भेदस्त्वेष निरयो नानापापैः प्रपद्यते ॥ तथैवान्धकमिश्रोऽयं द्वितीयो निरयो महान् ॥ ६ ॥ पश्य सूचीमुखैर्देहा भिद्यन्ते पापकारिणाम् ॥ कृमिभिर्घोरवक्त्रैश्च तमोतक्यादिभिर्द्विज ॥ ७ ॥ असावपि स्थितः षोढा श्वगृध्रपक्षिभिस्तथा ॥ परमर्मभिदो मर्त्याः पच्यन्ते तेषु पापिनः ॥ ८ ॥ तृतीयः क्रकचो ह्येषो निरयो घोरदर्शनः ॥ यत्रेमे क्रकचैर्मर्त्या

के पापों से मिलता है और वैसे ही यह दूसरा अंधतामिस्र नामक नरक है ॥ ६ ॥ सूई के समान मुखवाले तमोतकी नामक कीड़े इसमें पापियों को काटते हैं ॥ ७ ॥ यह भी कुत्ते गीध आदि पक्षियों के भेद से छ प्रकार का है इन्हों में दूसरों के चित्त को दुःखी करनेवाले पापी लोग गिराये जाते हैं ॥ ८ ॥ और यह क्रकच नामक भयंकर नरक है जिसमें

करौत से पापी लोग काटे जाते हैं ॥ ९ ॥ यह भी असिपत्र वन आदिक भेदों से छ प्रकार का है इसमें स्त्री और पुत्रादिकोंको आपुस में लड़ाकर अलग करने वाले पापी पचाये जाते हैं ॥ १० ॥ जो और भी अपने प्रिय हैं उन से अलग कराने वाले भी तरवार के पत्तों से काटे जाते हैं और कोई हुडार के भय से भागे जाते हैं ॥ ११ ॥ और

पच्यन्ते पापकारिणः ॥ ९ ॥ असिपत्रवनाद्यैस्तु षट्प्रकारोप्ययं स्थितः ॥ पत्नीपुत्रादिभिर्ये वै प्रयागं प्रापयन्ति हि ॥ १० ॥ इष्टैरन्यैरपि नरान् पच्यन्ते त इमे नराः ॥ असिपत्रैश्छिद्यमाना वृकभीत्या पलायिताः ॥ ११ ॥ पच्यन्ते पापिनः पश्य क्रन्दमानानितस्ततः ॥ अर्गलाख्यो महारौद्रश्चतुर्थो निरयो ह्ययम् ॥ १२ ॥ पश्य नानाविधैः पाशैराबध्यं यमकिङ्करैः ॥ असावपि च षड्भेदो वधभेदादिभिः स्थितः ॥ १३ ॥ कूटशाल्मलिनामाय निरयं पश्य पञ्चमम् ॥ यत्राङ्गारनिभा ता शाल्मल्यो लोमसन्निभाः ॥१४॥ यत्र षोढा निपच्यन्ते यातनाभिरिमे जनाः ॥

इधर उधर चिल्लाते हुए पापी लोग भाग रहे हैं इनको देखो और यह अर्गल नामक चौथा नरक है ॥ १२ ॥ इसमें नाना प्रकार की फांसियों से यमदूत बांधते हैं इसको देखो यह भी वध इत्यादि भेदों से छ प्रकार का है ॥१३॥ और इस कूटशाल्मलि नामक पांचवें नरक को देखो जिसमें सेंमर के अंगारों के सदृश बड़े२काँटे हैं ॥१४॥ यह भी यातना

इत्यादिक भेद से छ प्रकार के हैं इसमें जो पर स्त्री के साथ संग दूसरों से वैर और जो दूसरों के द्रव्य को हरण करते हैं इसमें पचाये जाते हैं ॥ १५ ॥ रक्त पूय (खून पीव) नामक छठे नरक को देखो इसमें नीचे मुख कराकर पापी लोग पचाये जाते हैं ॥ १६ ॥ जो भोजन करने योग्य नहीं उसको भोजन निन्दा और चुगली करने वाले

परदारपरद्रोहपरद्रव्यरताश्च ये ॥ १५ ॥ रक्तपूयमिमं पश्य षष्ठं निरयमुल्बणम् ॥ अधोमुखा विपच्यन्ते यत्र पापकृता नराः ॥ १६ ॥ अभक्ष्यभक्षका निन्दापैशून्याश्रिता इमे ॥ भज्यमाना विध्यमानाः क्रन्दन्ते भैरवान्रवान् ॥ १७ ॥ षट्प्रकारो विगन्धाद्यैरसावपि हि संस्थितः ॥ कुम्भी-पाकः सप्तमोऽयंऽयं निरयो घोरदर्शनः ॥ १८ ॥ षोढा तैलादिभिर्द्रव्यैर्धनेश्वर विलोकय ॥ महा पातकिनो यत्र कथ्यन्ते यमकिंकरैः ॥ १९ ॥ बहून्यब्दसहस्राणि भुञ्जन्ते यमयातनाः ॥

मनुष्य मारे तथा टुकड़े २ इसमें किये जाने पर भयंकर चिल्लाहट मचाते हैं ॥ १७ ॥ विगंधादिक भेद से यह छ प्रकार का है और घोर दर्शन कुंभीपाक नामक यह सातवाँ नरक है ॥ १८ ॥ हे धनेश्वर तैलादि द्रव्यों से यह भी छ प्रकार का है इसको देखो कि इसी में महापातकी लोग पचाये जाते हैं ॥ १९ ॥ इनसे बहुत हजारों वर्ष तक यम

यातना भोगनी पड़ती है ऐसे इन ४२ रौरव नरकों को देखो ॥ २० ॥ बिना इच्छा के जो पाप किये जाते हैं वे सूखे और जो इच्छा पूर्वक पाप किये जायें वे गीले पाप कहे जाते हैं ऐसे गीले और सूखे इन भेदों से दो प्रकार के पाप हैं ॥ २१ ॥ और भी अलग अलग ८४ तरह के नरक हैं, प्रकीर्ण १, पौक्तय २, मलिनीकरण ३, जातिभ्रंशकरण ४,

चत्वारिंशन्मितानेतान् द्व्यधिकान् पश्य रौरवान् ॥ २० ॥ आकामतशातकं शुष्कं कामादार्द्रमुदाहृतम् ॥ आर्द्रशुष्कादिभिः पापैर्द्विप्रकारानवस्थितान् ॥ २१ ॥ चतुरशीतिसंख्याकैः पृथग्भेदानवस्थितान् ॥ अप्रकीर्णं तु पांक्तेयं मलिनीकरणं तथा ॥ २२ ॥ जातिभ्रंशकरं तद्वदुपपाकसंज्ञकम् ॥ अतिपापं महापापं सप्तधा पातकं स्मृतम् ॥ २३ ॥ एभिः सप्तसु पच्यन्ते निरयेषु यथाक्रमम् ॥ कार्तिकव्रतिपुंभिर्यत् संसर्गो ह्यभवत्तव ॥ २४ ॥ तत्पुण्योपचयात्तत्र निर्हता निरया खलु ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ दर्शयित्वेति निरयान् प्रेतपस्तमथाहरत् ॥ २५ ॥ धनेश्वरं यत्तलोकं

उपपातक ५, अतिपातक, ६, महापातक ७ ये सात प्रकार के पातक हैं ॥२२।२३॥ इन सातों प्रकार के पातकी क्रम से पूर्वोक्त सातों नरकों को भोगते हैं !तुम्हारा कार्तिक व्रत करने वाले लोगों का साथ संग रहा है ॥ २४ ॥ उसके पुण्य के माहात्म्य से तुम्हारी इनकी यातना नष्ट होगई ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण बोले इस प्रकार प्रेतपति धनेश्वर

को नरक दिखाकर यक्षलोक में ले गया और उसको वहाँ का राजा बनाय दिया ॥ २६ ॥ वह धनेश्वर धनयक्ष नाम से प्रसिद्ध होकर कुबेर का अनुचर हुआ जिसके नाम से विश्वामित्र ने अयोध्याजी में एक तीर्थ बनाया ऐसे माहात्म्यवाला यह कार्तिकमास हैं जो भुक्ति मुक्ति को देता है जो यह मास व्रत करने वालोंको तथा उनके दर्शन करने

यक्षेशोऽभूत्स तत्र हि ॥ धनदस्यानुगः सोऽयं धनयक्ष इति स्मृतः ॥ २६ ॥ यदाख्ययाऽकरोत्तीर्थमयोध्यायां तु गाधिजः ॥ २७ ॥ एवं प्रभावः खलुकार्तिकोऽयं मुक्तिप्रदो भुक्तिकरश्च यस्मात् ॥ यो ह्रीत्यनेकार्जितपातकानि कर्तुश्च संदर्शनतोऽपि मुक्तिम् ॥ २८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यासंवादे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वासुदेवोऽसौ सत्यभामामतिप्रियाम् ॥ सायं संध्याविधिं कर्तुं जगाम च निजं गृहम् ॥ १ ॥ एवंप्रभावः प्रोक्तोऽयं कार्तिकः पापनाशनः ॥ विष्णुप्रियकरोऽत्यन्तं भुक्तिभुक्तिफलप्रदः ॥ २ ॥ हरि·

वालों को मुक्ति देता है ॥ २८ ॥ इति श्री प० पु० का० मा० सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार श्री कृष्णचन्द्र अति प्यारी सत्यभामा को कहकर सायंकाल की सन्ध्या करने के लिये अपने घर गये ॥१॥ ऐसे माहात्म्य वाला पापविनाशक विष्णु को अति प्यारा भुक्ति और मुक्ति देनेवाला कार्तिकमास है ॥ २ ॥ हरि जागरण

प्रातःकाल स्नान, तुलसी की सेवा उद्यापन और दीपदान ये कार्तिकमास के व्रत हैं ॥ ३ ॥ इन पांचों व्रतों से जो कार्तिकमास को पूरा करता है वह भुक्ति मुक्ति का फल प्राप्त करता है ॥४॥ ऋषि बोले विष्णु को प्यारा बड़ेभारी फलको देने वाला रोवें २ को हर्षित करनेवाला कार्तिकमासका आश्चर्यदायी माहात्म्य आपने इतिहासके साथ कहा ५

जागरणं प्रातः स्नानं तुलसिसेवनम् ॥ उद्यापनं दीपदानं व्रतान्येतानि कार्तिके ॥ ३ ॥ पञ्चकैर्व्रतकैरेभिः सम्पूर्णं कार्तिकव्रतम् ॥ फलमाप्नोति तत्प्रोक्तं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ विष्णुप्रियोऽतिफलदः प्रोक्तोऽयं रोमहर्षणे ॥ कार्तिकस्य व्रतं सम्यक् मेतिहासं च विस्मितः ॥ ५ ॥ अवश्यं च तथा कार्यं पापदुःखनिवृत्तये ॥ मोक्षार्थिभिर्नरैः सम्यग्भोगकामैस्तथापि वा ॥ ६ ॥ एवं स्थितो यदा कश्चिद् व्रतस्थः संकटे स्थितः ॥ दुर्गारण्यस्थितो वापि व्याधिभिः परिपीडितः ॥ ७ ॥ कथं तेन प्रकर्तव्यं कार्तिकव्रतकं शुभम् ॥ यस्मादत्यन्तफलदमत्याज्यं सर्वदा नरैः ॥ ८ ॥

मोक्षार्थी अथवा भोग की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को दुःख विनाशके लिये कार्तिक मासका व्रत अवश्य करना चाहिये ॥ ६ ॥ पूर्वोक्त प्रकार से कार्तिक व्रती यदि किसी संकट में पड़जाय दुर्गम स्थान अथवा वन में रहै या रोगी हो जाय वह कार्तिक का व्रत कैसे करे ॥ ७ ॥ क्योंकि इस अति फल देनेवाले व्रत को किसी प्रकार भी छोड़ना नहीं

चाहिये ॥ ८ ॥ इस प्रकार आपत्तियों में पड़जाने से भी दृढ़ता के साथ शिव विष्णु के मंदिर में जागरण करे ॥ ९ ॥ इन मंदिरों के अभाव में किसी भी देवता का स्थान होय उसमें करै ॥ १० ॥ दुर्ग और वन में अथवा किसी प्रकार की आपत्ति आपड़ने से पीपल के नीचे अथवा तुलसी के वनमें करै ॥ ११ ॥ विष्णु के समीप विष्णु के भजनों

सूत उवाच ॥ एवमापद्गतो यस्तु नरो नित्यं दृढव्रतः ॥ विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ॥९॥ शिवविष्णुगृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ॥ दुर्गाटव्यां स्थितो वाऽथ यदि वापद्गतो भवेत्॥१०॥कुर्याद्वटाश्वत्थमूले तुलसीनां वनेष्वपि ॥ विष्णुनामप्रबंधानां गायनं विष्णुसन्निधौ॥११॥ गोसहस्रप्रदाने यत्फलमाप्नोति मानवः ॥ वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाजपेयफलं लभेत् ॥ १२ ॥ सर्व-तीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात् ॥ आपद्गतो यदाप्यंभो न लभेत्कुत्रचिन्नरः ॥ १३ ॥ व्या-धितो वा यथा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नापि मार्जनम् ॥ उद्यापनविधिं कर्तुमशक्तो यो व्रतस्थितः ॥ १४॥

के गाने से हजार गोदान के समान फल होता है ॥ १२ ॥ और बाजे बजानेवाला वाजपेय यज्ञ का और नाचने वाला पुरुष सब तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ आपत्ति में पड़ जानेसे या रोगी हो जानेसे यदि

कदाचित् जल नहीं मिल सकै तो विष्णु के नाम ही से केवल मार्जन ही करले ॥ १४ ॥ और यदि उद्यापन की विधि न कर सकै तो व्रत की पूर्तिके लिये ब्राह्मण भोजन ही करवाय देवे ॥ १५ ॥ क्योंकि अप्रकट रूपवाले विष्णुके प्रकट स्वरूप ब्राह्मण हैं इनकी प्रसन्नता से विष्णु निःसन्देह सदा प्रसन्न रहते हैं ॥१६॥ और यदि दीपदान न करसके

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्व्रतसंपूर्णहेतवे ॥ अशक्तो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत् ॥ १५ ॥ तस्य वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः प्रयत्नतः ॥ अभावे तुलसीनां च पूजयेद्वैष्णवं द्विजम् ॥१६॥ तस्मात्सन्निहितो विष्णुः स्वभक्तेष्वेव सर्वदा ॥ सर्वाभावे व्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवामपि ॥ १७ ॥ सेवां ह्यश्वत्थवटयोर्व्रतसंपूर्णहेतवे ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथंत्वयाऽश्वत्थवटौ ब्राह्मणेन समौ स्मृतौ ॥ १८ ॥ सर्वेभ्यस्तु तरुभ्यस्तौ कस्मात्पूज्यतरौ स्मतौ ॥ सूत उवाच ॥ अश्वत्थरूपी भगवान् विष्णुरेव न संशयः ॥ १९ ॥ रुद्ररूपी वटस्तद्वत् पलाशो ब्रह्मरूपधृक् ॥ दर्शनं पूजनं सेवा तेषामघहरा स्मृता

तो दूसरे के दीपक को चैतन्य अथवा उसकी वायु आदिकोंसे रक्षा करै ॥१७॥ तुलसीके अभावमें वैष्णवोंकी पूजा करे क्योंकि भक्तों के सदा विष्णु समीपही निवास करते हैं ॥१८॥ उन सबों के न मिलने पर व्रत करनेवाला ब्राह्मण गौ पीपल और वड़ के वृक्ष की सेवा करे ॥१९॥ शौनकादिक ऋषि बोले आपने गौ और ब्राह्मणोंके समान पीपल और

बड़को कैसे बताये तथा सब वृक्षों से ये पीपल और बड़के वृक्ष कैसे अति श्रेष्ठ हैं ॥ २० ॥ सूतजी बोले पीपल का वृक्ष साक्षात् भगवान् विष्णु ही के समान वटका वृक्ष शिव रूपी और पलास ब्रह्माजी का रूप है ॥ २१ ॥ ऋषि बोले हमलोगोंको बड़ाभारी संदेह है कि ब्रह्मा विष्णु और महादेवजी वृक्ष रूप कैसे होगये यह आप कहिये ॥ २२॥

॥ २० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कस्माद्वृक्षत्वमापन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ एतत्कथय धर्मज्ञ संशयोत्र महान्हि नः ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ पार्वतीशिवयोर्देवाः सुरतं कुर्वतोः किल ॥ अग्निर्ब्राह्मण-रूपेण गतश्च विघ्नकृत्पुरा ॥ २२ ॥ ततश्च पार्वती क्रुद्धा शशाप त्रिदिवौकसः ॥ रतोत्सवसुख-भ्रंशात् कम्पमाना रुषा तदा ॥ २३ ॥ पार्वत्युवाच ॥ कृमिकीटादयोऽप्येते जानन्ति सुरते सुखम् ॥ तद्विघ्नकारिणो देवा ह्युद्बीजत्वमवाप्स्यथ ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं सा पार्वती देवान्

एक समय शिव और पार्वती विषय भोग कर रहे थे उसी समय उनके विषय भोगमें विघ्न करने के लिये सब देवता और अग्नि ब्राह्मण का रूप धारण कर वहाँ गये ॥ २३ ॥ विषय भोग के आनन्दका नाश होजानेसे क्रोधसे कांपती हुई पार्वती ने देवताओं को शाप दिया था ॥२४॥ पार्वती बोली हे देवो ! विषयके सुखको कृमिकीटादिक भी जानते

हैं उसमें आप लोगों ने विघ्न किया इससे आप लोग वृक्ष रूप हो जावो ॥२५॥ सूतजी बोले इस प्रकार क्रोधित चित्त से देवताओं को पार्वती के शाप देने से सब देवता वृक्ष होगये ॥ २५ ॥ इसी कारण विष्णु और शिव जी दोनों पीपल और बड़ होगये पीपल के वृक्ष पर शनि की दृष्टि पड़ जानेके कारण शनिवारके दिन ही पीपलों को स्पर्श करना

शशाप क्रुद्धमानसा ॥ तस्माद्वृक्षत्वमापन्नाः सर्वे देवगणाः किल ॥ २५ ॥ तस्मादिमौ विष्णुमहेश्वरावुभौ बभूवतुर्बोधिवटौ मुनीश्वराः ॥ बोधिस्त्वगादर्कदिनं विनैव संस्पृश्यतामर्कज-विष्णुयोगात् ॥ २६ ॥ इति श्री प० का० मा० श्रीकृ० स० सं० अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अस्पृश्यत्वं कथं यातः सूतबोधितरुस्त्वयम् ॥ स्पश्यत्वं हि कथं यातस्तथाऽयं शनिवासरे ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ समुद्रमथनाद्यानि रत्नान्यापुः सुरोत्तमाः ॥ श्रियं च कौस्तुभं

चाहिये और दिन नहीं ॥ २७ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यभामासम्वादे बलदेवकृत भाषा टीकायां अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! यह पीपलका वृक्ष और दिनों में कैसे छूने योग्य नहीं है और शनिवार के दिन कैसे छुआ जाता है ॥ १ ॥ सूतजी बोले समुद्र के मथन से जो रत्न देवताओं को मिले थे वे उनमेसे

ज्येष्ठा

देवताओंने लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि विष्णु को दिया ॥२॥ जब विष्णु अपनी भार्या बनाने को उद्यत हुए तब विष्णुसे लक्ष्मीने प्रार्थना की ॥ ३ ॥ लक्ष्मी बोली मेरी बड़ी बहिन का विवाह किये विना छोटी से आप कैसे विवाह करते हैं इसीसे मेरी बड़ी बहिन का विवाह करके मेरेसे पीछे विवाह कीजिये क्योंकि यही सनातन धर्म है ऐसे उसका बचन सुनकर

तेषां विष्णवे प्रददुः सुराः ॥ २ ॥ यावदङ्गीचकाराऽसौ लक्ष्मीं भार्यार्थमात्मनः ॥ तावद्विज्ञापयामास लक्ष्मीस्तं चक्रपाणिनम् ॥ ३ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ असंस्कृत्य कथं ज्येष्ठां कनिष्ठा परिणीयते ॥ तस्मान्ममाग्रजामेतामलक्ष्मीं मधुसूदन ॥ ४ ॥ विवाह्य नय मां पश्चादेष धर्मः सनातनः ॥ उद्दालकाय मुनये स दीर्घतपसे तदा ॥ ५ ॥ आत्मवाक्यानुरोधेन तामलक्ष्मीं ददौ किल ॥ स्थूलास्यां शुभ्रदशनां जरठीं बिभ्रतीं तनुम् ॥ ६ ॥ विततां रक्तनयनां रूक्षगात्रशिरोरुहाम् ॥ स मुनिर्विष्णुवाक्यात्तामङ्गीकृत्य स्वमाश्रमम् ॥ ७ ॥ वेदध्वनिसमायुक्तमानयामास धर्मवित् ॥ होमधूमसुग-

भगवान् ॥ ४ ॥ ५ ॥ बड़े तपस्वी उद्दालक मुनिके साथ बड़े आग्रह पूर्वक विवाह करदिया ॥ ६ ॥ जिसका मोटा मुंह, सफेद दांत तथा वृद्धा के ऐसे शरीरको धारण किये है बड़े २ लाल नेत्र और रूखा शरीर और बालवाली ॥ ७ ॥

व .मा. । :१॥

ऐसी उसको विष्णुके कहने से स्वीकार कर वेदध्वनिसे संयुक्त अपने आश्रममें वह मुनि ले आये ॥८॥ होम के धूमसे सुगन्धित वेदध्वनि से शब्दायमान, उस आश्रमको देखकर वह दुःखित होकर बोली ॥ ६ ॥ इस आश्रम में वेद ध्वनि हो रही है इससे यह मेरे रहने योग्य नहीं है मैं इसमें नहीं आऊंगी हमको दूसरी जगह ले चलो ॥ १० ॥

न्धाढ्यं वेदघोषनिनादितम् ॥ ८ ॥ आश्रमं तं समालोक्य व्यथिता साऽब्रवीदिदम् ॥ ज्येष्ठोवाच ॥ वेदध्वनिर्भवेद्यस्मिन्नतिथीनां च पूजनम् ॥ ९ ॥ न चागमिष्ये भो ब्रह्मन्नयस्वान्यत्र मां ध्रुवम् ॥ उद्दालक उवाच ॥ कथं नायासि कान्ते वै वर्ततेऽलं मतं तव ॥ १० ॥ तव योग्या च वसतिः का भवेच्च वदस्व तत् ॥ ज्येष्ठोवाच ॥ वेदध्वनिर्भवेद्यस्मिन्नतिथीनां च पूजनम् ॥ ११ ॥ यज्ञदानादिकं वापि नैव तत्र वसाम्यहम् ॥ परस्परानुरागेण दाम्पत्यं यत्र वर्तते ॥ १२ ॥ पितृदेवार्चनं यत्र तत्र नैव वसाम्यहम् ॥ रात्रौ रात्रौ गृहे यस्मिन् दम्पत्योः कलहो भवेत् ॥ १३ ॥

उद्दालक बोले हे कान्ते तुम इसमें क्यों नहीं आती और तुम्हारे रहने योग्य स्थान कौन है सो कहो ॥ ११ ॥ ज्येष्ठा (दरिद्रा) बोली जहाँ वेदध्वनि, अतिथियों की पूजा और यज्ञादि नहीं होते वहां मैं निवास करती हूं ॥ १२ ॥ जहाँ आपुसमें स्त्री पुरुष में प्रेम है और पितर-देवताओं का यज्ञ पूजन होते हैं वहाँ मैं नहीं रहती ॥ १३ ॥

प. अ.२६

॥८१॥

जहां उद्योग करनेवाले नीति विद्या में चतुर, धर्मात्मा, मीठे २ वचन बोलनेवाले पुरुष रहते हैं और जहाँ गुरु की पूजा होती है वहां पर मैं नहीं रहती ॥ १४ ॥ रात दिन जहां पर स्त्री और पुरुषमें लड़ाई होती हो और जहाँसे अतिथि निराश होकर चले जायँ वहां पर मैं प्रसन्नतासे रहती हूं ॥ १५ ॥ जहां वृद्ध, सज्जन और

निराशा यान्त्यतिथयस्तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥ वृद्धसज्जनविप्राणां यत्र स्यादपमाननम् ॥ १४ ॥
निष्ठुरं भाषणं यत्र तत्र नित्यं वसाम्यहम् ॥ दुराचाररता यत्र परद्रव्यापहारिणः ॥ १५ ॥
परदाररताश्चापि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥ गोवधो मद्यपानं च यत्र संजायतेऽनिशम् ॥ १६ ॥
ब्रह्महत्यादिपापानि तस्मिन्स्थाने रतिर्मम ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा विषण्णवदनोऽभवत् ॥ १७ ॥ उद्दालकः पुनर्विष्णोर्वाक्यं श्रुत्वा न चोचिवान् ॥ सोऽगच्छद्यत्र यत्रेमां

मित्रों का अनादर होता होय और जहां कठोर २ वचन कहे जाते हों वहां मैं सदा निवास करती हूं ॥ १६ ॥ दुष्ट आचरण दूसरों के धनको अपहरण और परस्त्रीगमन करने वाले जहाँ रहते हैं वहाँ मैं प्रसन्नतासे रहती हूं ॥ १७ ॥

जहां रात दिन गोवध मदिरा का पान, और ब्रह्महत्यादिक पाप होते रहते हों वहां मैं प्रसन्नतापूर्वक रहती हूं ॥ १८॥ सूतजी बोले ऐसा उस दरिद्रा का वचन सुनकर मुनि का मुख उदास हो गया तब उससे बोले ॥ १९ ॥ मैं जब तक तुम्हारे रहने के योग्य स्थान ढूँढकर नहीं आऊं तब तक तुम इस पीपलके वृक्ष के नीचे स्थिर होकर बैठो ॥२०॥

पूजामालोक्य साऽब्रवीत् ॥ १८ ॥ नायाम्यहं च तत्रैवं श्रमन्वेदातुरोऽभवत् ॥ उद्दालकस्ततो वाक्यं तामलक्ष्मीमुवाच ह ॥ १९ ॥ उद्दालक उवाच ॥ अश्वत्थवृक्षमूलेऽस्मिन्नलक्ष्मीस्त्वं स्थिरा भव ॥ आवासस्थानमालोक्य यावच्चायाम्यहं पुनः ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इति तां तत्र संस्थाप्य जगामोद्दालकस्तदा ॥ प्रतीक्ष्यापि चिरं तत्र तदा तं न ददर्श ह ॥ २१ ॥ तदा रुरोद करुणं भर्तृत्यागेन दुःखिता ॥ तत्तस्या रुदितं सा श्री वैकुण्ठभवनेऽशृणोत् ॥ २२ ॥ तदा विज्ञापयामास

सूतजी बोले ऐसे उसको वहां पर बैठाकर उद्दालकजी वहाँसे चलेगये तब उनकी बहुत देरतक बाट जोहने पर भी जब वे दिखाई नहीं दिये ॥ २१ ॥ तब पतिके त्यागसे दुःखित होकर विलाप करने लगी उसके विलापको लक्ष्मी ने वैकुण्ठ में सुना फिर विष्णु से व्याकुल चित्त होकर ॥ २२ ॥ लक्ष्मी प्रार्थना करने लगी लक्ष्मी बोली हे नाथ हमारी बड़ी बहिन

पति के त्याग देने से बड़ी दुःखित होगई है ॥२३॥ हे कृपालो ! यदि मैं आपकी प्यारी हूं तो उसको समझाने के लिये आप जाइये सूतजी बोले कि कृपासिन्धु भगवान् लक्ष्मी के साथ वहाँ आये ॥ २४ ॥ और उस अलक्ष्मी (दरिद्रा) को समझाते हुए विष्णु बोले हे अलक्ष्मी ! इसी पीपल के वृक्ष में तुम नित्य स्थिर होकर निवास करो मेरे ही अंश से

विष्णुमुद्विग्नमानसा ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ सा च ममाग्रजा ज्येष्ठा भर्तृत्यागेन दुःखिता ॥ २३ ॥ तामाश्वासयितुं याहि कृपया यद्यहं प्रिया ॥ लक्ष्म्या सह ततो विष्णुस्तत्रागच्छत्कृपानिधिः ॥ २४ ॥ आश्वासयन्नलक्ष्मीं तामिदंवचनमब्रवीत् ॥ विष्णुरुवाच ॥ अश्वत्थमूलमासाद्यसदाऽलक्ष्मि स्थिरा भव ॥ २५ ॥ ममांशसंभवोऽश्वत्थ आवासस्तु मया कृतः ॥ प्रत्यब्दं येऽर्चयिष्यन्ति त्वां ज्येष्ठां गृहधर्मिणः ॥ २६ ॥ ते श्रीगुणैः प्रयुक्ताश्च सदा तिष्ठन्ति निश्चितम् ॥ अङ्गनाभिः सदा

इसकी उत्पत्ति है ॥२५॥ और इसी लिये तुम्हारे रहने का स्थान मैंने यही किया है प्रतिवर्ष जो गृहस्थ तुम्हारा पूजन करेंगे ॥ २६ ॥ उन्हीं के गृह में तुम्हारी छोटी बहिन लक्ष्मी स्थिर होकर रहैगी और नाना प्रकार की भेंटों से स्त्रियों

को अवश्य पूजा करनी चाहिये॥ २७ ॥ और जो पुष्प गंधादिकों से तुम्हारी पूजा करेंगे उनपर लक्ष्मी प्रसन्न रहेगी सूतजी बोले श्रीकृष्ण और सत्यभामा का तथा पृथु और नारद का संवाद तुम लोगों से मैंने कहा ॥ २८ ॥ अब और क्या पूछने की इच्छा है उसको मैं विस्तारपूर्वक कहूं । ऐसा सूतजी का वचन सुनकर ही शौनकादिक ऋषि

पूज्या बलिभिर्विविधैस्तदा ॥ २७ ॥ पुष्पधूपादिभिश्चैव तेषां लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ कृष्णसत्योश्च संवादं नारदस्य पृथोस्तथा ॥ २८ ॥ अन्यत्किं प्रष्टुकामाऽथ वदामि च सुविस्तरम् ॥ इति तद्वच-नाद्देवा ऋषयः सस्मितास्तदा ॥ २९ ॥ नोचुः परस्परं किंचित्तूष्णीमेवावतस्थिरे ॥ जग्मुश्च बदरीं द्रष्टुं सर्वे वै शान्तमानसाः ॥३०॥ य इदं शृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा नरोत्तमान् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्येत

प्रसन्न होगये ॥ २९ ॥ और आपुस में कुछ भी नहीं बोले और चुपचाप ही रह गये और शान्त चित्त होकर बदरी नारायण जी के दर्शन करने को चले गये ॥ ३० ॥ इसको जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य लोगों को सुनायें या

अपने सुनै तो उसकी सब पापोंसे छूटकर सायुज्य मुक्ति होती है ॥ ३१ ॥

विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे कार्तिकमाहात्म्ये श्रीकृष्णसत्यासंवादे ज्येष्ठाख्यानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ इतिकार्तिकमासमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

इति श्री पद्मपुराणे कार्त्तिक माहात्म्ये श्री कृष्णसत्यभामासंवादे पाटलिपुत्रनिवासी श्री विद्वद्वर नानकराम शर्म्म तनूज बलदेव कृत भाषा टीकायां एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥
समाप्तमिदं कार्तिकमाहात्म्यं ज्येष्ठ सुदी ७ शुक्रे सं० १९५९

॥ बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, राजादरवाजा, काशी द्वारा प्रकाशितम् ॥

॥ काश्यां रामघट्टे हितचिन्तक यन्त्रालये बी. एल्. पावगी द्वारा मुद्रितम् ॥

पुस्तक मिलने का पता—

बैजनाथप्रसाद बुकसेलर

राजादरवाजा, बनारस सिटी।

॥८४॥

इति
पद्मपुराणोक्तं कार्तिकमासमाहात्म्यं
भाषाटीकासमेतम् ।